हरमिलाप मिशन ग्रंथमाला—

"मानव जीवन का रहस्य"

(श्री १०८ श्री मुनि हरमिलापी जी महाराज के प्रवचनों का संग्रह)

"हरमिलापी बन के दुनिया में, सदा गुञ्जन कर।
दिल किसी का मत दुखा तू हर में हरि पहचान कर॥"

सम्पादक :
श्री 'प्रदीप' जयपुरी
सहायक सम्पादक :
श्री हरमहेन्द्र 'धीरज'

श्री हरमिलाप मिशन ग्रंथमाला-
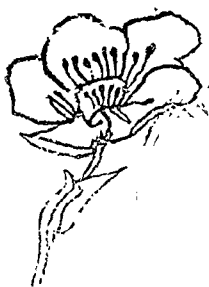
"मानव जीवन का रहस्य"

(श्री १०८ श्री मुनि हरमिलापी जी महाराज के
प्रवचनों का संग्रह)

"हरमिलापी बन के दुनिया में, सदा गुज़रान कर।
दिल किसी का मत दुखा तू हर में हरि पहचान कर॥"

सम्पादक :
श्री 'प्रदीप' जयपुरी
सहायक सम्पादक :
श्री हरमहेन्द्र 'धीरज'

श्री १०८ श्री गुरु हरमिलापी जी
हरमिलाप-गीताभवन-हरिद्वार

मानव जीवन का रहस्य

लें० श्री १०८ श्री मुनि हरमिलापी जी महाराज

"जीना ऐसा जीना होवे, जी न कोई कल्पाये तू ।
मरना ऐसा मरना होवे, मर कर फिर न आये तू ।।
तू रोता हो सब हंसते हों, जिस वक्त यहाँ पर आये तू ।
सब रोते हों तू हँसता हो, जिस वक्त यहाँ से जाये तू ।।"

सारिणी

श्री मुखसार : जीवाधार

"हरमिलापी बनके दुनियाँ में सदा गुजरान कर।
दिल किसी का मत दुखा तूं, हर में हरि पहिचान कर।"

× × ×

"न जा मंदिर, ना कर सिजदा, ना इसका कुछ मुजाका है।
दिल न तोड़ना बँदे किसी का, यह घर खास खुदा का है।"

× × ×

"हर में हरि निहार कर, हर से करो मिलाप।
घृणा, द्वेष फिर क्यों रहे, सब है अपना आप।।"

× × +

"मानसता भी है यही, सब ग्रन्थन को लेख।
यही सार वेदान्त को, हर में हरि को देख।।"

सत्यमेव जयते

एकोदेवा: सर्वभूतेषु गूढ़ः सर्वव्यापी, सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः, साक्षी चेता, केवलो निर्गुणश्च।'

(श्वेता० ६/११)

भाव:—एक ही परमात्मा सब प्राणियों के अन्दर छिपा हुआ है, सबमें व्याप्त हो रहा है। सब जीवों के भीतर का अन्तरात्मा है। जो कुछ कार्य सृष्टि में हो रहा है, उसका वह नियन्ता है। सब प्राणियों के भीतर बस रहा है। सब सांसारिक कार्यों का साक्षी रुप देखने वाला

चैतन्य, केवल एक, जिसका कोई जोड़ नहीं है औ
गुणों के दोष से रहित है।

अनुवादः—ईश समाया सब बिस्वै, जड़, चेतन अरु स्थू
आप बीज ही हो रहा, वही शाख वही फूल

रामायण में गोस्वामी तुलसीदास जी का सत्य —

सोइ सच्चिदानँद घन रामा, अज, विग्यान रुप बल ध
व्यापक, व्याप्त, अखँड, अनंता। अखिल, अमोघ सक्ति, भगव
निर्मल, निराकार, निरमोहा। नित्य, निरंजन, सुख-सँदो
अगुन, अदभ्र, गिरा, गोतीता, समदरसी, अनवद्य, अजी
प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी, ब्रह्म, निरीह, बिरज, अविना
ईश्वर, अँस जीव अविनाशी, चेतन, अमल, सहज, गुणरा

स्वयं भगवान कृष्ण ने गीता में कहा है—

'ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति।'
(१८/१

'समं सर्वेषु भूतेषु तिष्ठन्तं परमेश्वरम्'
(१३/२

'समोऽहं सर्वभूतेषु'...... (गीताः ९/२

भावः—हे अर्जुन ईश्वर सब जीवों के हृदय में निवास क
है।

गुरु-वन्दना

'गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु, गुरुर्देवो महेश्वरः
गुरु साक्षात परंब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।'

भावः—गुरु ही ब्रह्मा है, गुरु ही विष्णु है, गुरु ही महादेव है। गुरु ही साक्षात पर ब्रह्म स्वरूप है, उन्हीं श्री गुरु चरणों में मैं नमस्कार करता हूँ।......ऐसे त्रिदेव स्वरूप पूज्य गुरु आशीर्वाद दें कि—

ॐ असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय',
मृत्योर्मा अमृतं गमय,
अविरावीर्म एधि ।

ॐ शान्ति शान्ति शान्ति ॐ

भावः—हे सच्चिदानंद घन परमात्मन् स्वरूप गुरू मुझे असत्य से सत्य की ओर, तम (अज्ञान) से प्रकाश (ज्ञान) की ओर प्रेरित कीजिए तथा मुझे मृत्यु से अमृत की ओर भेजिए। यही विनय है कि मेरे समक्ष अविर्भूत हो जाइये। त्रिविध ताप की शान्ति हो।

सद्गुरु महिमा

जब सत्गुरु पूर्ण देव मिले,
फिर दूसरा देव मनाना क्या।
आतम में आतम देव मिले,
फिर बन बन खोजन जाना क्य
मैं सतगुरु की, सत्गुरु मेरे,
मैं और नहीं वह और नही
जब ऐसा निश्चय धार लिया,
फिर और से प्रेम लगाना क्य
सतगुरु से सच्चा ज्ञान मिला,
भव तरने का सामान मिला।
फिर पोथी पुस्तक, पन्ने में,
जीवन को वृथा लगाना क्या
जब मन मंदिर में जोत जगी,
फिर दूसरा दीप जलाना क्या
जब सतगुरु पूर्णदेव मिले,
फिर दूसरा देव मानना 'क्या

दोहाः—गुरु धोबी, शिष्य कपड़ा, साबन सिर्जनहार
सुरत शिला पर धोइये, तो रंग चढ़ै अपार

—पूज्यनीया बहिन सुश्री जीवन्मु
प्रेम मंदिर, अम्ब

हरमिलाप संदेश का महत्व : दो शब्द

हरमिलाप शब्द बहुत विस्तृत एवं गूढ़ है! यह कोई घरेलू देश-
यापी, साम्प्रदायिकता पूर्ण, फिरकापरस्त एवं राजनीतिक पहलू नहीं है,
होई ऐसी कमजोर बुनियाद नहीं, जिसमें वैमनस्य (मतान्तर) देखा
जा सके ! इसमें तो विश्वशान्ति, धर्म एवं विश्व बन्धुत्व की भावना
भरी हुई है। अध्यात्मिक प्रेरणा की गरिमा अपने आप में ओत प्रोत है!
ऐसे गूढ तत्व की विवेचना, मीमाँसा, करना विद्वानों की अपनी-अपनी
बुद्धि की परिपक्वता एवं अन्तर्निहित ज्ञान तक सीमित है !

यह सर्वविदित है कि आम-ख्याल की जनता में दोष होते हैं।
ध्रुव सत्य है कि मनुष्य के अन्दर कुछ बुनियादी कमियाँ होती हैं, जो
देश, काल, परिस्थिति एवं समाज के वातावरण के अनुसार दमन भी
होती रहती हैं, और उग्र रूप भी धारण कर लिया करती हैं। ये
कमियाँ अपने आप दूर नही होती हैं। बल्कि विद्वानों के लेख, सद्ग्रन्थों
एवं महापुरुषों के सत्संग द्वारा दूर हो जाया करती हैं। इतिहास साक्षी
है कि हमारी भारतीय हिन्दू संस्कृति ऐसे ही महापुरुषों के तत्वज्ञान,
दर्शन, साख्य आदि कल्याणकारी करिश्मों से भरी हुई है। इसीलिए
विश्व में हमारी संस्कृतिक अपना एक खास महत्व रखती है। अत:
'हरमिलाप' शब्द 'संदेश' के सामंजस्य से मिलकर विशुद्ध हिन्दू-संस्कृति
की अर्वाचीन परिचार्य का प्रतीक है ! समान आदर, सम-व्यवहार,
सर्वहिताय, सर्वकल्याणकारी भावना का सही संदेश लाना, जनता
जनार्दन को सही राह दिखाना, अपने सुनहरी आध्यात्म मार्ग पर प्रशस्त
करने की आदि भावना 'हरमिलाप मिशन' का सूत्रधार है। यही वह
सीढ़ी है जहाँ नफरत राग द्वेष का त्याग करना सिखाया जाता है ताकि
सांसारिक-प्रपंचों में पड़ा मानव अपनी सही दिशा, सही मंजिल का
ज्ञान प्राप्त करले ! 'हरमिलाप' कोई सम्प्रदाय नहीं है, एक अपना
मत है --

तक पहुँचाते, अक्सर सुना होगा। यही नियम यहाँ भी लागू होता है। सत्व (Being) और जीव (Gens) आदि में क्या तादात्म्य है, हर (जीवात्मा) का मिलाप (संयोग, मिलन, संधि) का संदेश है। यह केवल एक राष्ट्र का ही संदेश नहीं है, यह विश्व के समस्त प्राणियों के लिए आध्यात्म-प्रेरणा का संदेश (A broadcast to Universe) है। प्राणियों में सद्भावना उत्पन्न हो, धर्म और सत्य सदा-सर्वदा नित्य रहें, चिर शाश्वत बने रहें, अविद्याओं एवं संकीर्ण भावनाओं पर पड़ा प्रभाव का पर्दा उठ जाए। असत्य के स्थान पर सत्यार्थ प्रकाश हो, समूचे विश्व का कल्याण हो, यही "हरमिलाप-संदेश" की आदि भावना है, चिरस्थायी, अनुपम, आदर्श है ! यह आध्यात्मिक एवं सदाचार, नैतिक आचरण पर खड़ी की गई मजबूत बुनियाद है, जिस पर कल्याणरूपी भवन का निर्माण करना है। ऐसी इमारत जिसमें जनता जनार्दन की तस्वीरें लगी हों—उजले काँच की भाँति प्राकृतिक रूप से चमकती हुईं।

यह मानव के लिए कल्याणकारी, परहित का अपना मार्ग है। यह दर्पण है 'हरहर' का। अद्वैत है 'हरि' का और सार में—मुमुक्षु के हेतु मुक्ति का संदेश है। स्वर्गीय प्रधान मंत्री लाल बहादुर शास्त्री के वह शक्तिशाली वाक्य अभी तक सजीव हैं, चिर शाश्वत हैं वातावरण में :—

"यद्यपि विज्ञान की उन्नति के कारण मनुष्य जाति को आज ऐसी सुविधाएँ उपलब्ध हैं, जैसी पहिले नहीं थीं, फिर भी संसार में वैमनस्यता है, अशान्ति फैली हुई है। मर्यादा सपनों की चीज हो गई है। इसका कारण है मनुष्य का भौतिकता की ओर बढ़ता हुआ झुकाव। मानव की अशान्ति दूर करने के लिए आवश्यक है कि नैतिक एवं आध्यात्मिक गुणों का विकास किया जावे। क्योंकि मानव जाति की समस्त उन्नति भौतिकता एवं आध्यात्मिकता के उचित समन्वय मे ही सम्भव है।"

नेता की यह हार्दिक वाणी तभी सम्भव है, जब नैतिकता, सदाचार का प्रचार करने वाले संतों, विश्व कल्याण के जिज्ञासु

हापुरुषों के प्रवचनों को सुना जाए अथवा किसी माध्यम से इन म्बन्धित उपदेशों को जनता तक पहुँचाया जाए। पत्रिका अथवा पुस्तक रूप में यह प्रयास अत्योत्तम माना गया है ! 'हरमिलाप-संदेश' का तो ध्येय ही यही है—

"हर में हरि निहारकर, हर से करो मिलाप।
घृणा द्वेष फिर क्यों रहे, सब है अपना आप॥"

यह तत्वबोध कराने वाली मानवता वादी शक्ति है, एक सम्यक प्रयास है। एक साधना है, साथ हीं 'हरहर' की उपासना है। भेदभाव वही लोग प्राणिमात्र में मानते हैं जिन्हें तत्वबोध नहीं होता है। तत्वबोध हो जाने पर किसी भी प्राणि में राग, द्वेष नहीं रहने पाता है।

"सर्व भूतेषु: यः पश्येद् भगवद्भावमात्मन;
भूतानि भगवत्मात्मन्यैव भागवतोत्तमः।"
(श्रीमद्भागवत् ११।२।४५)

'उमा जे राम चरण रत विगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय देखहिं जगत, का सन करहिं विरोध !!'
—श्री तुलसी दास जी

इतना ही नही, संदेश के रूप में अन्य ज्ञान पुंज रूपी पत्रिकाएँ जिन्हें मनोरंजन का साधन माना गया है, जीवनोपयोगी सिद्ध होती हैं। किन्तु खाली मनोरंजन ही जीवन का एकाँग न हो जाए, अतः नैतिक आध्यात्मिक ग्रन्थों का पाठन भी नित्य सत्य होना चाहिए ! कौन नहीं परिचित है इस सत्य वाक्य से–कि श्री मुनिजी महराज हरमिलापी आज भारत की उन चंद विभूतियों में से है, जिन्होंने अभी इन्ही गत वर्षो में बहुत ही अच्छे विश्व प्रेम के चमत्कार हिन्दू समाज या अन्य समाज के सामने दिखाये हैं। उदाहरणार्थ बरेली में फजल रहमान का, श्रीचरणों से प्रेरित होकर. हिन्दू-मंदिर-स्थापना में सहयोग, हिन्दू-मुस्लिम एकता एवं विश्व-दर्शन की बेजोड़ मिसाल है ! स्थान-स्थान पर हरमिलाप-गीता भवन सत्संग भवन, मंदिरों आदि की स्थापना में सहयोग एवं

दान वृत्ति, उनकी अपनी तपस्या है, विश्व विमोहिनी शक्ति है ! यह कार्य हरेक प्राणी के बूते की बात नहीं है ! वह इस दिशा में वास्तव में श्रध्देय एवं पूज्य है ! फिर देशाटन (भ्रमण) में स्थान-२ पर जाकर (लिंग, रंग, वर्ण एवं जाति भेद से रहित होकर) प्राणियों के उत्थान हेतु, नैतिक, आचरणशील एवं आध्यात्मिक उपदेश, प्रवचन सत्संग का आयोजन एवं प्रयोजन-समागम उनके मिशन का प्रतीक है। जनता जनार्दन में प्रेम रखने की अपने किस्म की एक ही मिसाल है ! तो यह निर्णय होता है कि महान पुरुष का यह संदेश जन-जन जागरण के लिए जनता में पहुँचना उतना ही जरूरी है, जितना जिंदा रहने के लिए अन्न, जल एवं वायु। मस्तिष्क में सद्बुद्धि हो. विवेक उत्पन्न हो, सद्भावना का प्रसार हो, इस दिशा में 'हरमिलाप संदेश' का माध्यम ही आशातीत सफलता का योग कहा जा सकता है !

यह भी सर्व विदित है, कि सभी प्राणी परमानन्द सुख एवं शान्ति के लिए अनन्त काल से भटक रहे हैं। संसार के सभी कार्य सुख और शान्ति का अनुभव करने के लिए किए जाते हैं। किन्तु अहर्निश अपने अपने कार्यों में संलग्न प्राणियों को स्थाई सुख एवं शान्ति का आभास नहीं हो पाता है। इससे विदित होता है कि हम जिस वस्तु व्यक्ति अथवा परिस्थिति से सुख के अभिलाषी हैं, वहाँ सही अर्थों में सुख है ही नहीं, केवल सुखाभास है। स्वार्थमय प्रवंचना है, कोरी मृग-मरीचिका है। नाशवान वस्तु, शरीर एवं परिवर्तनशील परिस्थिति में शाश्वत सुख की अनुभूति कैसे हो सकती है? इस चिर-अशान्ति का कारण है हमारा अपूर्ण अनिर्धारित लक्ष्य (Immatured Pre-Planning) विचार-मंथन (Thinking) एवं गलत तरीके का परवीक्षण (Observation in wrong sense) भाव यह है कि हमारे कार्यों के माध्यम सही नहीं है। या तो सब अधूरे हैं अथवा उनका सही दिशा में उचित प्रयोग नहीं किया गया है। इस दिशा में 'हरमिलाप संदेश' पुण्य भागीरथी का कार्य संभाल रहा है। प्रमाण-स्वरूप—

'हरमिलापी हर का प्यारा आ गया।
नूरे-रब्बी आँखों का तारा आ गया !'

—श्री हननाम दास 'दास'

मैं फिर भी इस बात को तर्क की दृष्टि से अक्षरश: सही मानता हूँ की 'हरमिलाप संदेश' एवं श्री १०८ श्री मुनिजी हरमिलापी महाराज में केवल विचार मात्र का यही अन्तर है—जितना दिव्य-ज्योति एवं ज्योति में। 'हरमिलाप-संदेश' का महत्व जीवन की मीमांसा से सम्बन्धित आपकी अपनी ही ज्योति है। क्योंकि दिव्य ज्योति की पावन किरनें ही इस ज्योति में समाई हुई है ! किसी ने क्या खूब कहा है :—

"दो दिल धड़क रहे हैं, आवाज़ एक है।
नग्मे जुदा-जुदा हैं, पर साज़ एक है।
तड़पाइये न हमको, शरमाइये न हमसे—
हम दो कहानियाँ हैं, पर राज़ एक है !!"

पुस्तक की आवश्यकता : मेरी आदि भावना

मैंने कई दिनों से प्रवचनों (मानव जीवन का रहस्य : श्री मुनिजी हरमिलापी) के पढ़ने एवं चिर-मंथन के पश्चात यह अनुभव किया कि श्री मुख के इन पुण्य भागीरथी प्रवचनों को समद्धिवादी स्वरूप देना चाहिए ताकि मानव जीवन क्या है, क्या होना चाहिए आदि क्रमागत श्रेणी में पढ़ा जा सके। इस सम्बन्ध में इसी सत्र रमण रेती में **'गिरा नयन, नयन बिन वाणी'** के माध्यम से २२-३-६६ को श्री मुनि जी महाराज से 'हरमिलाप संदेश' के प्रकाशन पर कुछ लम्बे विचार विमर्श हुए थे। यह पुस्तक उसी हार्दिक प्रेरणा का एक प्रयास है। मेरी अपने इस कार्य में सफलता है या नहीं, यह प्रश्न गौण है। मुख्य सवाल तो पाठकों को 'मानव जीवन रहस्य' पर श्री मुख द्वारा अधिक से अधिक विचार-सामग्री जुटाना मात्र है। अन्य कई एक प्रकाशन की

लिपी त्रुटियों, प्रिंटिंग एवं आरक्षण विधि (Sketch of Printing Style) में कमी देखकर पाठको के समक्ष 'मानव जीवन का रहस्य' पुस्तक रूप में सही तौर पर रखना ही इस प्रयास में समाई हुई आदि भावना है !

जनता-जनार्दन से यह मेरी करबद्ध विनय है कि सुझाव सदैव आदरणीय माने जाने चाहिए। चिर शाश्वत रूप देना हमारा मानसिक विकास का गुण होना चाहिए। यह प्रयास पूर्णतयः नैतिकता, आध्यात्मिकता एवं प्रसार की दृष्टि से किया गया है। इस पुस्तक का प्रयास, किसी विद्वान,महापुरुप के तर्क, विचारों की टीका-टिप्पणी एवं आलोचना से कोसों दूर है।

इस प्रयास की आदि भावना केवल मात्र श्री १०८ श्री ब्रह्मश्रोत्रिय, श्रध्देय, श्री मुनिजी महाराज के पुण्य प्रवचनों, आख्यानों एवं लेखों को (जो पत्रिका में समय-समय पर प्रकाशित होते हैं अथवा जनता के समक्ष सत्संग के स्वरुप में आते रहे हैं)एकत्रित करना मात्र है।

"जाकी रही भावना जैसी। प्रभु मूरत तिन देखी तैसी।"

"पुस्तक का मुख्योद्धेश्य"

१. समय समय पर मासिक प्रकाशन में गौण, किन्तु महत्वपूर्ण, शैली, विधि आदि प्रकाशन त्रुटियों को दूर करना।

२. श्री मुखोद्‌गार से प्रवाहित सरल, प्रवाहमयी शैली को प्रयोग में लाकर श्री मुनिजी ने जिस वृहद् ज्ञान को हमें दिया है। उसे 'समष्टि' का रुप देना ही लेखकों एवं पाठकों के लिए सही दिशा है। उनकी असीम ज्ञान शक्ति को विस्तृत रुप में लाना हैं। उनकी अपनी तपस्या के प्रकाश का सारे विश्व में संचार करना है।

प्रत्येक बुद्धिजीवी वर्ग से (विद्वान-युवकों-स्नातकों) मेरी यहविनय है कि ऐसे महान पुरुषों की शिक्षाओं का ज्यादा से ज्यादा भाषाओं में अनुवाद करके पहुँचाना चाहिए। भारत में कई भाषाएं हैं। किसी भी

भाषा से प्रसार कार्य, आने वाली पीढ़ी के लिए कल्याणकारी कार्य होगा। वैसे तो प्रत्येक लिपिवद्ध कोई भी सद्‌विचार (ज्ञान), चाहे जिस भाषा में हो, कामाध्यों संम्मानीय माना गया है। जैसे शब्दों से वाक्यों की, और वाक्यों से पूरे भाव की, उत्पत्ति होती है, उसी प्रकार उस ज्ञान का अधिक से अधिक प्रसार करने से उसकी सच्ची सार्थकता है। 'मासिक प्रकाशन'❋ के साथ-२ पुस्तक प्रकाशन इस दिशा में एक और ज्योति पुञ्ज लिए नवीन चरण होगा ! क्योंकि विद्वानों का ऐसा मत चला आ रहा है।

"हमें मानव जाति के महान शिक्षकों, प्रवक्ताओं, कवियों और संतों से शिक्षा लेने का शुद्ध प्रयत्न करना चाहिए। हमें उनकी सहानुभूतिपूर्ण स्थापनाओं को समझने एवं व्याख्या करने की चेष्टा करनी चाहिए।"

'We should strive to learn from great teachers, the prophets and the poets and saints of human race and should seek to know and finally to interpret their inspired writing.'

—'The substance of faith allied with Science' by Sir Oliver Lodge. (P.132)

जिस प्रकार दर्द दर्द का साथी भी है, और दवा भी। यही नित्य मेरी आदि भावना है !

यह विचारणीय है कि 'हरमिलाप संदेश' की मान्यता सही अर्थों में तभी सार्थक कहीं जा सकेगी, जब पाठकगण, बुद्धिजीवी वर्ग अथवा विद्वान इसे अपना पवित्र ग्रन्थ मानकर जीवन निधि समझें। "उचित विचार, परिवीक्षण द्वारा हासिल होता है, यही सही प्रेरणा है। यही सही कर्म है"—(Proper thinking means correct observation

❋किन्हीं कारणों वश मासिक प्रकाशन जून १९६६ से बंद हो गया है।

followed by true perception that is action i
question—"Philosophy of life").

अन्त में मैं अपनी भावना को जनता जनार्दन के श्रीचरणों में समर्पि
करते हुए स्वर्गीय डा० राजेन्द्र प्रसाद के उन शब्दों को परवीक्षण
स्वरूप देकर अपनी आदि भावना को विशुद्ध बौद्धिक ही मानूंगा, आलो
चनात्मक नहीं।"

"काम से ज्यादा का . के पीछे की भावना का महत्व होता है। ज
ा्र्य शुद्ध हृदय से होता है, देखने में छोटा भले ही हो, परन्तु उसका
ल महत्वपूर्ण होता है।"

—डा० राजेन्द्र प्रसाद

ओम् शम्

—सम्पादक मंडल

"आशीर्वाद"

हरमिलाप संदेश का मासिक प्रकाशन किन्हीं कारणों से बंद हो जाने के कारण कई स्थानों से पत्रों द्वारा अथवा स्वयं उपस्थित होकर कई श्रद्धालुओं ने पवित्र प्रवचनों के साफल्य लाभ से वंचित हो जाने के कारण चिन्ता व्यक्त की। कुछ श्रद्धालुओं के हृदय में मानसिक उथल पुथल होती ही रही। चुनाँचे कई एक भक्तगणों की सहृदय यह कामना सत्गुरू चरण में रही कि क्यों न इन प्रवचनों को पुस्तकाकार छाप दिया जाय और धीरे धीरे इसी माध्यम से जनता जनार्दन की सेवा का अवसर मिलता रहे। इन्हीं श्रद्धालुओं में श्री प्रदीप जी पिछले दिनों जो रमण रेती में सत्संग लाभ उठाने आये थे, विशेष चिंतित दिखाई दे रहे थे। उनकी अपनी हार्दिक इच्छा थी कि हम तो बहुत दूर पहुँच गये हैं 'हरमिलाप संदेश' का सहारा अब कैसे मिलेगा। अन्य सभी प्रेमियों ने अपने २ विचार रक्खे किन्तु प्रभु प्रेरणा के बिना कुछ सम्भव नहीं है। लेकिन जिनके हृदय में प्रेमाग्नि जल उठती है वह हर मुश्किल के बाद कुछ कर सकने की क्षमता रखते हैं। कुछ ही दिनों बाद 'मानव जीवन' के रहस्य की पुस्तकाकार हस्तलिपि हमें हरिद्वार में पार्सल द्वारा मिली, और श्रद्धालुओं के परिश्रम ने हमसे पुस्तक प्रकाशन की स्वीकृति ले ली ! समय बड़ा प्रबल है मार्ग में बड़ी कठिनाइयों के बाद आज जनता जनार्दन के समक्ष यह पुस्तक ला रक्खी है। हमारे हृदय में प्रसन्नता है कि इस पुस्तक के प्रबन्ध एवं सम्पादन कार्य में बिलकुल जवान खून (भाव: वयस्क प्रेमियों) की श्रद्धा गुंथी हुई है जो इस बात का उदाहरण है कि हमारे वयस्क प्रेमी यदि इस की ओर थोड़ा सा समय निकाल कर श्रेष्ठ मार्ग का अनुकरण करें तो जनता जनार्दन की सेवा का मौका हमको और तेजी से मिलता रहेगा। चूँकि हमें अवकाश

नहीं मिल पाता - सत्संग भ्रमण की दिशा में प्रभु प्रेरणा है।

विशेष हम आशीर्वाद स्वरूप यही प्रेमी पाठकों से कहना चाहे
कि बहुत कम लोग मृत्यु से पूर्व अपने आप को पहिचान पाते
अपने को पहिचानने के लिए मनुष्य को अपने से बाहर निकलकर तट
बनकर आत्म निरीक्षण करना पड़ता है। जो कुछ आप आज कर रहे
उससे सौ गुना शक्ति आपके अन्दर छिपी है। वास्तव में महत्व उस
नहीं जो आप अब कर रहे हैं, बल्कि उसका है जो आप भविष्य में क
की इच्छा रखते हैं, जिसकी प्रबल आकांक्षा आपको उस महानता
की ओर खींचती है। अब तक शायद आपकी शक्ति का पूरा विकास
हो पाया हो। किन्हीं बाधाओं के कारण आपका विकास अपूर्ण रहग
हो किन्तु उसी भीतर छिपे महान व्यक्तित्व का पूरा विकास आप
करना है, यही ईश्वर का आदेश है। बीज के रूप में छिपी इन्हीं विशे
ताओं को प्रकट करना ही आपके जीवन का एक मात्र लक्ष्य हो
चाहिए।

यह पुस्तक आपको कितना लाभ पहुँचा सकेगी उतना ही जित
आपकी श्रद्धा और आपकाआत्म विश्वास जितना आप कर सकने में सम
होंगे। "वही अनुभव, पुस्तक उपदेश अथवा विचार मनुष्य के जीव
में सबसे अधिक महत्व रखता है, जो उसके हृदय को छू कर उसमें छिपे
महानता, उसके सोये हुए सिंह को जगा दे। महत्वपूर्ण वह नही जो तु
आज हो बल्कि वह है जो तुम कल बन सकते हो।"

: श्रीहरि :

आप का अपना आप,

मुनि हरमिलापी, हरिद्वार !

१. जीना कैसे हो ?

"जीना ऐसा जीना होवे, जी न कोई कल्पाये तूँ ।
मरना ऐसा मरना होवे, मर कर फिर न आये तूँ ।।"

तूँ रोता हो, सब हँसते हों, जिस वक्त यहाँ पर आये तूँ ।
सब रोते हों, तूँ हँसता हो, जिस वक्त यहाँ से जाये तूँ ।
करें लोग तुम्हें सब याद, यहाँ इस तौर बितावो जीवन को ।
जीवन इक आदर्श हो इस तौर बनावो जीवन को !!
और पाप का भी कोई जीना है धिक्कार है ऐसे जीने पर ।
धिक्कार है इस मानुस तन पर, धिक्कार है खाने पीने पर ।।
जीना ऐसा जीना होवे, जी न कोई कल्पाये तूँ ।।
मरना ऐसा मरना होवे, मरकर फिर न आये तूँ ।।

× × ×

प्रतीत ऐसा होता है कि मानव जीवन का रहस्य इन थोड़े शब्दों में छिपा हुआ है। अर्थात् सागर को गागर में समाहित कर दिया गया है, ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार श्री वेद व्यास जी ने अठारह पुराणों का सार एक ही श्लोक में निर्णीत कर दिया है :—

"अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचन द्वयम् ।
परोपकारः पुण्याय पापाय पर पीड़नम् ।।"

कितना रहस्य इस श्लोक में है ! तीन-चार मन दूध का मटका भरा हुआ यदि किसी व्यक्ति को उठाने को कहा जाय

तो सम्भवत: विशेष अड़चन पड़ेगी। परन्तु उस तीन-चा
मन दूध का मक्खन निकालकर यदि रख दिया जावे तो छो
सा बालक भी सुविधा से उठा लेगा। इसी प्रकार अठार
पुराणों के अध्ययन करने में कठिनाई है। यदि अध्ययन भ
कर लें तो सब श्लोक स्मरण करने बहुत कठिन हैं। श्री वे
व्यास ने अठारह पुराणों का सार एक श्लोक में माखन
रूप में हमारे समक्ष रखा। यही निर्णय श्री गोस्वामी तुलसी
दास जी ने रामायण में दिया है:—

"परहित सरिस धर्म नहिं भाई।
पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥"

अपने हरमिलाप मिशन का तो परम लक्ष्य ही एक मात्र यही है।

'हर मिलापी बन के दुनियाँ में सदा गुज़रान कर।
दिल किसी का मत दुखा तूं, हर में हरि पहिचान कर॥'

यदि इस पर मैं और आप अनुकरण करें, तो सब पूजा पाठ, जप, तप और वेदान्त का सार इसी में छिपा है।

'हर में हरि निहार कर, हर से करो मिलाप।
घृणा, द्वेष फिर क्या रहे, सब है अपना आप॥'

"समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः"
(गीता १२।१८)

मैं और आप से भाव है—हम सब। 'मैं' भी दो प्रकार का होता है एक कच्चा मैं और दूसरा पक्का मैं। 'मेरा मकान'

मेरा घर, मेरा लड़का आदि कच्चा,' 'मैं' है (अहम् भाव) और पक्का मैं है—'मैं आपका दास' 'मैं आपकी सन्तान' और 'मैं वही नित्य-मुक्त-ज्ञान-स्वरूप हूँ (सोऽहम्)।' 'सोऽहम्'—यह आत्म-भाव है। किन्तु सांसारिक जीव में, इस पार्थिव शरीर के रहते 'मेरा' अथवा 'मैं पन' पूर्ण रूप से नहीं मिट सकता कुछ न कुछ रह ही जाता है। किन्तु महापुरुष जब 'मैं' का प्रयोग करते हैं तो उसमें अपनत्व-भाव होता है। कुछ प्रयोग एवं निरन्तर अभ्यास से 'हर में हरि' निहारने से प्रथम मैं (अहम्-भाव) स्वतः ही अपनत्व-भाव (सोऽहम्) में परिवर्तित हो जाता है। जैसे किसी ने मिसाल दी है:—

'ना जा मंदिर, ना कर सिज्दा, न इसका कुछ मुज़ाका है।
दिल न तोड़ना बंदे किसी का, यह घर खास खुदा का है।'

इसी आधार पर स्वामी राम कहते हैं—

'बेगाना गर नज़र पड़े, तू आशना को देख !
दुश्मन भी आये सामने, तो भी खुदा को देख !!'

प्रमाण स्वरूप गीता में भी कहा गया है—

'समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः'

(गीता ९।२९)

श्री गुरु गोविन्दसिंह जी महाराज का एक शिष्य था भाई कन्हैया। जिस समय गुरुजी का यवनों के साथ संग्राम हो रहा था, सब सिख जान की बाजी लगा कर लड़ रहे थे तो भाई कन्हैया ने प्रार्थना की, 'जिस योग्य आप मुझे समझें

सेवा प्रदान करें।' तब श्री गुरु जी ने आज्ञा दी, कि '
संग्राम में घायल सिक्खों को जल पिलावें।" भाई कन्हैय
कहा—"सत्य बचन"। जब रणभूमि में जल लेकर गये
अपने पराये का भेद ही मन से उठ गया। संग्राम
सिक्ख अथवा यवन घायल पड़े थे। सबको ही जल पि
लगे। तब संकुचित हृदय अर्थात् तंग दिल विचार के सि
श्री गुरु जी के पास गये और कहा :—'जिस अपने शिष्य
आप प्रशंसा करते थे कि वह पूर्ण आज्ञाकारी है, वह
हमारे शत्रुओं (यवनों) को पानी पिला रहा है।' तो
गुरु जी ने भाई कन्हैया को बुलाया और कहा 'तू किस
जल पिलाता है ?" तो उसने विनम्र प्रार्थना की, "सरक
मैं तो आपको ही जल पिलाता हूँ। मुझे तो रणभूमि
बिना आपके कोई नजर नहीं आता।"

यह कमाले इश्क है, या इनतिहाये बेखुदी,
आपकी सूरत नज़र आती है हर तस्वीर में।

महामुनि नारद ने भक्तिसूत्र में गुरु एवं शिष्य (सेवक
में कोई भेद नहीं बताया है—

'तस्मिस्तज्जने भेदा भावात्।
ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति।'

भक्तिसूत्र-४१

"Between God and his devotee, there is no difference,
the devotee is none otherthan *God himself*".

(भाव-भक्त और भगवान में, गुरु और सेवक, (शिष्य)

में, उपास्य और उपासक में, आराध्य और आराधक में कोई भेद नहीं है। भक्त, सेवक, उपासक एवं आराधक भी सिवा भगवान, गुरु, उपास्य, आराध्य के स्वयं अस्तित्वहीन है— अर्थात् एक ज्योति की किरणें हैं)

"....मैं जिधर देखता हूँ, मुझे आप ही नजर आते हैं। दूसरा कोई प्रतीत नहीं होता।"

यह सुनकर श्री गुरुजी ने कहा, "तेरी आत्म-दृष्टि" बन गई है चार प्रकार की दृष्टि होती है (१) विकार दृष्टि (२) व्यवहार दृष्टि (३) विचार दृष्टि (४) प्यार दृष्टि। इन दृष्टियों में विचार दृष्टि और प्यार दृष्टि जीवन में महत्व की हैं। तेरी प्यार दृष्टि जो सबसे उत्तम है, वही बन गयी है। उन्होंने (गुरुजी) आशीर्वाद दिया—"तुम्हारे द्वारा सेवा-पंथ चलेगा, अब तुम जल के साथ मरहम-पट्टी भी किया करो।"—इस दृष्टि वाले का जीवन ही जीवन है—अन्यथा जीवन मृत्यु के समान है :—

विश्व-प्रेम-प्रेरणा (सद्गुण) उसी वस्तु का नाम है जिससे हर प्राणी में (जड़, चेतन, स्थूल) अपने महबूब (प्रियतम) की तस्वीर दिखायी दे। भाव यह है कि 'हर में हरि' को साक्षी जो पाता है, तो स्वयं उसकी दृष्टि में प्रियतम (भगवान, गुरु,) की तस्वीर होती है। वह किसी भी परिस्थिति में चाहे क्यों न हो, उसे 'एक वही' 'एक वही' (तू ही तू) दिखाई पड़ता है। उसकी मैं (अहम्) स्वतः

ही अपनत्व-भाव (सोऽहम) हो जाती है यही एकांगी प्रेम (अनन्य-भक्ति) है, क्योंकि यह आदान नहीं अपितु प्रदान है (आत्म-समर्पण)। किसी ने कहा है—

'दिल का हं रोना, कोई खेल नहीं है, मुह को कलेजा आने दो।
मते थमते कहीं अश्क थमेंगे, नासेह को समझाने दो।'

अतः वह व्यक्ति गुरुमुख होते हैं—उनको जीवन में कई ार वरदान मिलते रहते हैं। क्योंकि प्रेमी की नजर ही सकी लबान होती है। यही अनन्यता है, अभिन्नता है।

इश्क ने दिल को पुकारा इस तरह
मैं यह समझा आपकी आवाज है ॥ (अ)
उनसे मिलकर मैं उन्हीं में खो गया,
और जा कुछ है वो आगे राज़ है। (ब)

—मुहम्मद 'नूह'

निर्णय यही हुआ कि (अ) विचार दृष्टि (ब) प्यार ट (आत्मसात-प्रेरणा) यहाँ प्रभु प्रेमियों को, (पाठकों को) दोनों दृष्टियों का भाव समझ लेना चाहिए—'विचार ट'—केवल 'वसुधैव कुटुम्बकम्' का ही भाव है। सारी ाई में अपनापन सा महसूस कराने वाली धारणायें—विचार ः (ज्ञान चक्षु) होती है। विचार दृष्टि में 'सेवक' (सेवा ा) बनने की भावना छिपी रहती है। यह उच्च आत्म- ादन है। 'मैं कौन हूँ' का ध्यान आने लगता है। प्रेमी ृदय में अपने आप ममता (दया) का भाव आने लगता वह हमेशा सोचता रहता है कि 'प्रभु मेरे हैं' और मैं

प्रभु का हूं। सेवक का धर्म तो योगियों को भी अगम्य होता है—

सेवक-हित साहिब सेवकाई। करई सकल सुख-लोभ विहाई।

—तुलसीदास

'सद्विचारों का नाम ही भगवत सेवा है'—संत टामस

'विचार दृष्टि' प्रेमी को हमेशा उद्बोधित करती रहती है, लक्ष्य की ओर—

'तुम्हारी भक्ति न छोड़हूं, तन मन सिर किन जाव।"
तुम साहिब मैं दास हूं, भलो वनो है दाव।।

—चरणदास

प्यार दृष्टि—छोड़े बड़े का त्याग, छूत-अछूत का निर्विकार आदि, प्राणी सभी कुछ त्याग कर, अपने पराये का भेद भूल कर यही कहता फिरता है—

"मिट-मिट के मुहब्बत में तेरी,
यूं तुझको पुकारे जाते हैं।
कट कट के दरिया की तह से
जिस तरह किनारे जाते हैं।।"

—और दूसरी ओर 'प्यार-दृष्टि' दिव्य होकर सारे आलममें यही कहती है, जैसे भक्त दयाबाई ने कहा—

"सीस नवै तो तुमहिं को, तुमहिं सूं भाखूं दीन।
जो सगरूं तो तुमहिं सूं, तुव चरणन आधीन।"

सेवा हृदय का विषय है । सच्चा सेवक, 'न राज्य की, न स्वर्ग की, और न मोक्ष की कामना करता है, बस संसार का हर प्राणीमात्र दुःख की ज्वाला से छुटकारा पाये, विश्व का कल्याण हो, विश्वप्रेम का सरसब्ज दौर आये, यही उसकी परम कामना होती है ।

"न त्वहं कामये राज्यं, न स्वर्गं न पुनर्भवम्'
कामये दुःख तप्तानामार्तानामार्ति नाशनम् ॥"

क्योंकि अपने लिए प्रार्थना करने वाले भक्त तीन प्रकार के होते हैं—आर्त्त, जिज्ञासु तथा अर्थार्थी । चतुर्थ श्रेणी में वह भक्त, जिनकी आत्म-दृष्टि बन जाती है, जिन्हें प्यार ही प्यार दिखायी देता हैं-उन्हे ज्ञानी कहते हैं । ऐसे ही महापुरुषों का ना सफल है, सार्थक एवं आदर्श पूर्ण है :

'जीना है उसी का जो जिया इन्सान होकर ।
वरना जीना खाक है जो जिया शैतान होकर ॥'

मानव-जीवन में किसी समय मनुष्य शैतान होता है, किसी समय हैवान होता है, किसी समय इन्सान होता है और किसी समय भगवान (दिव्य ज्योति) होता है । जिसके जीवन में कोई भूल न हो वह है भगवान; जिसके जीवन में भूलें हों, किन्तु वह उनका सुधार कर लेता हो—वह है इन्सान ; जिन्हे भूलों का ज्ञान नहीं हो, वह है हैवान और जिसे भूलों का ज्ञान हो, किन्तु उनका सुधार नहीं करे—वह है शैतान । हम यदि भगवान नहीं बन सकते तो इन्सान बनने का तो अवश्य प्रयत्न करें । कई मनुष्य देखने में मानव (इन्सान)

नज़र आते हैं, परन्तु भीतर पशुता भरी होती है। तुलसीदास जी ने कहा हैः—

'पशु घड़न्ते नर घड़े, भूल सींग और पूंछ।
तुलसी हरि के भजन बिन, धिक् दाढ़ो, धिक् मूंछ॥
एक जैसा काम हैं, इन्सान अरु हैवान में।
दर्दमंदी से फ़ज़ीलत है सिरफ इन्सान में॥'

मानव के रूप में दानव के लक्षण ये हैं—

'जो किसी मज़लूम की हस्ती बचा सकता नहीं।
जो किसी इन्सान के भी काम आ सकता नहीं॥
जो किसी इन्सान की बिगड़ी बना सकता नहीं।
जो किसी मग़मूम को ढाढ़स बंधा सकता नहीं॥
खाक है इन्सानियत और खाक वह इन्सान है।
आदमी के भेष में वह, बदतरी हैवान है॥

× × ×

जो किसी इन्सान को खाना खिला सकता नहीं।
जो किसी के वास्ते खुद को मिटा सकता नहीं॥
दूर है इन्सानियत से वह नाम का इन्सान है।
आदमी के भेष में वह बदतरी हैवान है॥
अपने दिल को जो गुनाहों से बचा सकता नहीं।
अपने दिल को राहे-हक़ में जो लगा सकता नहीं॥
जोश में जो होश का जलवा दिखा सकता नहीं।
जो किसी के दिल में बनके दर्द पा सकता नहीं॥

मुज़रमे इख़लाक है और सूरते-शैतान है।
आदमी के भेष में वह बदतरी हैवान है॥'

× × ×

"आत्मार्थ जीव लोकेऽस्मिन को न जीवति मानवः!
परं परोपकारार्थं यो जीवति सः जीवति!"

अपने लिए इस लोक में कौन मनुष्य नहीं जीता है। परन्तु जो परोपकार के लिए जीता है, वह जीता है।

मरना भला है उसका, जो अपने लिए जिये।
जीता है वह जो मर चुका है औरों के लिए॥

अतः शुद्ध मनसे मानव को इसी सार पर निरन्तर सोचना है, 'तू कौन है, तू क्यों यहाँ आया है, तेरा सही 'तत्सद्' स्वरूप क्या हैं? तेरा आचरण क्या होना चाहिए? तेरा जीवनाधार कौन है?" निरन्तर महापुरुषों के इस वाक्य-मंत्र को स्मरण रखना चाहिए:—

जीना ऐसा जीना होवे, जो न कोई कल्पाये तूं।

॥ ओ३म् शुभम् ॥

जीना कैसा हो

'जीना ऐसा जीना होवे, जी न कोई कल्पाये तूं।'

—इस पर विचार किया था कि ओ मानव, तेरे द्वारा किसी को दुःख न हो, तू पुरुष बन। तुझे हरेक गले लगाले। काँटा न बनकि पथिक उठाकर मार्ग से दूर फेंक दें। जिससे जैसा और जितना (सामर्थ्यानुसार) बन सके परहित होना चाहिए। जैसा तेरा हृदय शुद्ध और मधुर है, वैसी ही सुगन्ध तेरी जिह्वा से आनी चाहिए। परहित से नफरत दूर होती है और विश्व प्रेम का सचार होता हैं। किसी ने कहा भी है:—

सबसे मीठा बोलिये, सुख उपजै चहुं ओर!
बसीकरन यह मंत्र है, तज दे वचन कठोर!!'

'घट घट मेरा साइयाँ, खाली घट नहीं कोय।
बलिहारी वा घट की, जा घट परगट होय॥'

× × ×

हरि व्यापक सर्वत्र समाना प्रेम ने प्रगट होई मैं जाना॥

—रामायण

—प्रेम कैसे पैदा हो? परहित कैसे हो? यही मंत्र है जो 'जीना कैसा हो' बताता है! अतः फूल बन। क्योंकि फूल के स्पर्श से सुगन्धी उठती है, और काँटे के स्पर्श से वेदना होती

है। किसी को सुख देना, स्वयं सुखी होना है और किसी
दुःख देना, स्वयं दुःखी होना है। आप प्रत्यक्ष देखिये कि
शरीर के अंगों पर खुजली होती है पर नाखून पर किसी व्य
को खुजली नहीं होती है। कारण नाखून सारे शरीर
खुजली हटा कर सुख देता है, इसलिए उसको स्वयं खुज
नहीं होती है, वह सुखी रहता है, अर्थात् उसके जीवन
खुजली होती ही नहीं! विद्वानों का युगों युगों से यह उद
बचन चला आ रहा है—'प्रेम ही ईश्वर है।' सारे जगत
प्रेम के सिवा और कुछ भी नहीं है—

कहता हूँ इक बात मैं, मन चाहे तो मान।
सकल विश्व को प्रेम से, अपने जैसा जान!!

पहिले उदाहरण के विपरीत, माचिस की तीली प्रथ
यं जलती है, और फिर दूसरे को जलाती है। यदि व
स्वयं न जले, तो दूसरे को नहीं जला सकती। इससे निर्ण
हुआ।

'चार वेद, षड़ शास्त्र में, बात मिली है दोय!
सुख दिये सुख होत है, दुख दिये दुख होये।।
जो किसी को इस जहाँ में बेवजा कलपायेगा।
साफ़ रोशन है कि वह भी कल कहीं न पायेगा!
जो गड़ा खोदेगा इस जा दूसरे के वास्ते—
ठीक जानो कि वही उसमें गिराया जायेगा!!
कर्म भूमि है यह दुनियाँ, कर्म ही प्रधान है—
जो कर्म जैसा करेगा, वैसा ही फल पायेगा!!"

"—'परार्थे योऽवटं कर्त्ता, तस्मिन् स पतति ध्रुवम्'..."
—अर्थात् दूसरों के लिए खाई खोदने वाला स्वयं निश्चय ही उसमें गिरता है। इसी पर एक उदाहरण आपके समक्ष रखते हैं, जो थोड़े समय की घटना है। कहानी के रूप में रखने लगे हैं। परन्तु यह ध्यान रहे कि सत्संग कहानियों के लिए नहीं है, कथा-कहानियां सत्संग के लिए होती हैं। कलकत्ता नगर में एक विधवा देवी थी, जिसका इकलौता बेटा था। बेटे का जन्म होने के शीघ्र बाद पति का साया सिर से उठ गया। घर में अति गरीबी थी। वह माता दूसरों के घर चक्की पीस कर, बर्तन साफ कर और मेहनत मजदूरी करके बच्चे का पालन पोषण करती थी। जब बालक विद्याध्ययन के योग्य हो गया तो माता ने स्कूल में दाखिल करा दिया। बालक बुद्धि तीव्र थी, वह छोटी कक्षा में शीघ्र ही उत्तीर्ण हो गया और अपने स्कूल से फर्स्ट निकला तो छोटी कक्षा के प्रधानाध्यापक ने बालक की माता के घर जाकर प्रार्थना की कि, "तेरा बालक योग्य है, मैट्रिक तक जरूर पढ़ाना चाहिए।" माता ने कहा कि "मैं विधवा हूँ, निर्धन हूँ, मेरे पास धन की शक्ति नहीं है कि बड़ी कक्षा में पढ़ा सकूं। तो प्रधानाध्यापक ने कहा, "प्रति मास जो फीस ली जाती है, वह नहीं ली जावेगी, और भी हम सहयोग दे देंगे, भाव पुस्तकें हम दे देंगे। तू केवल भोजन, वस्त्र का प्रबन्ध कर! मैट्रिक उत्तीर्ण हो जाने पर अच्छी पोस्ट तेरे बालक को मिल जावेगी और तेरी गरीबी दूर हो जायेगी।" माता ने भविष्य सुधरता देखकर निश्चय कर लिया कि चाहे मुझे कितना कष्ट

उठाना पड़े परन्तु बालक का जीवन बन जाये इसलिये उसको मैट्रिक पास कराने का निश्चय कर लिया। बालक प्रतिदिन प्रातः उठते ही माता को प्रणाम करता, फिर स्नानादि कर प्रभु-नाम का जाप करता, फिर स्कूल जाता। माता दूसरे घरों में चक्की पीसती, बर्तन साफ करती, परन्तु वाणी द्वारा जाप स्मरण करती रहती। माता प्रभुभक्ता थी, पुत्र मातृ भक्त था। प्रभु की अपार कृपा से बालक मैट्रिक में सारे कलकत्ता में फर्स्ट आया। जिस स्कूल में बालक पढ़ता था, वहां के अध्यापकों एवं छात्रों ने जलूस निकाला, बालक के गले में फूल मालाएँ डालीं और बैण्ड बाजे से घर पहुंचाने गये। सारे नगर में बालक की चर्चा थी। बालक ने घर पहुँचते ही माता के चरणों में साष्टांग प्रणाम् की तथा प्रेमाश्रु से माता के चरण धो दिये। माता ने गद्गद् हो बालक को उठाया और हृदय से लगाया। अध्यापक वर्ग तथा छात्रों ने बधाई दी। गली मुहल्ला के लोगों ने भी बधाई दी। रात्रि तक लोग, भाई, माई वधाई देने के लिए आते रहे। माता की प्रसन्नता की कोई सीमा न रही। इसी हर्ष में माता और पुत्र दोनों सो गये। प्रभु की लीला, प्रातः उठने पर बालक को टाईफाइड (Typhoid) हो गया। माता की खुशी गम में बदल गयी। घर की साधारण औषधि एक सप्ताह तक रही, परन्तु लाभ न हुआ। फिर अस्पताल गयी, डाक्टर साहब से प्रार्थना की, "मेरे इकलौते पुत्र को युवावस्था में टाइफाइड हो गया है, कृपा करके आप कुटीर पर चलकर निरीक्षण करें।" डाक्टर ने कहा—"मेरे पास अवकाश नहीं,

एक सप्ताह की औषधि ले जाओ।" माता औषधि लेकर घर आई। एक हफ्ता दवा भी दी, किन्तु कोई लाभ नहीं हुआ। फिर एक सप्ताह होम्योपैथिक दवाई की, परन्तु कोई लाभ प्रतीत नहीं हुआ। फिर एक सप्ताह तक आयुर्वेदिक दवाई की, परन्तु ज्यों-ज्यों दवा करती गयी, मरज़ बढ़ता ही गया। अब यहां तक नौबत आ गयी कि बालक की जबान बंद हो गयी माता यह अवस्था देखकर घबड़ा गयी और आंखों से अश्रु धारा बहने लगी। अपने झोपड़े में बालक को गोदी में लेकर उच्च स्वर से रुदन करने लगी, रोने की आवाज एक दयालु मनुष्य के कानों में पड़ी। वह भा ा कर आया और पूछा, "माता, क्यों रो रही हो ?" रोती आप हो हृदय मेरा विदीर्ण होता है।" बुढ़िया ने ठंडी आह भर कर कहा, "कई मनुष्य गुज़रे हैं, किसी ने पर्वाह नहीं की, परन्तु एक आप मुझे दीन, दुःखी देखकर आये हो।"

"दीन दीन सब कोई कहे, दीन न जाने कोय !
जो कोई जाने दीन को, दीनबन्धु वश होय !!"

माता ने अपनी व्यथा कह सुनाई, तो दयालु सज्जन ने कहा, "बुढ़िया तू निराश न हो। पंजाबी में कहते हैं, 'जाँ जाँ सास ताँ ताँ बन्दा आस रखदा' अर्थात् जब तक प्राण हैं, निराश नहीं होना चाहिए। यहाँ कलकत्ता नगर के एक कैप्टन डाक्टर बड़े प्रसिद्ध हैं, उनकी बड़ी कोठी है, उनके हाथ में प्रभु ने बड़ी शफा भी बख्शी है, परन्तु वह स्वयं

स्वभाव के बड़े क्रूर हैं। तू उनकी कोठी में चली जा, यदि उनका मूड (**Mood**) अच्छा हुआ, मन में दया आ गई, तेरे झोंपड़े में यदि आ गये, तो मुझे विश्वास है कि तेरा बालक ठीक हो जायेगा।" "मरता क्या न करता", वह करुणपुकार करती हुई, उनकी कोठी पर पहुँच गई। वहाँ कई महान् व्यक्ति डाक्टर साहब के पास बैठे थे, हास-विलास चल रहा था। बुढ़िया के रुदन से सन्नाटा छा गया।

डाक्टर ने कहा, "बुढ़िया रोती क्यों हो, बात कर।" बुढ़िया ने कहा कि मुझ गरीब के डूबते हुए बेड़े को पार लगाओ।" डाक्टर ने कहा, बात तो कर। बुढ़िया ने अपनी दर्द भरी कहानी सुनाई और कहा—मैं निराश हो चुकी थी, किसी दयालु ने आपकी कोठी का पथ प्रदर्शन कराया तो मैं आपकी शरण आ गई। कृपया आप मुझ गरीब के झोंपड़े में पधारें। मेरे बालक की जबान बन्द हो गई है, चल फिर नहीं सकता है, आपके हाथ में प्रभु ने शफ़ा बख्शी है। सम्भव है मेरे बेटे का स्वास्थ्य ठीक हो जाये, मैं आपको आशीर्वाद देती रहूंगी। डाक्टर साहब ने कहा, "जिसने तुमको मेरी कोठी का पता बताया है, उसने मेरी फीस, भेंट नहीं बताई ?" उसने कहा—"नहीं"। डाक्टर साहब ने कहा कि पहिले तो मैं किसी के घर जाता ही नहीं, यदि जाऊँ तो सौ रुपये फीस लेता हूँ, तेरे पास सौ रुपये हो तो मेरी मेज पर धर दे, नहीं तो मेरी कोठी से बाहर चली जा। बुढ़िया ने ठंडी आह भरकर कहा :—

"कोई आता है जर लेकर, कोई लालो-गोहर लेकर।
मैं आई हूँ यहाँ आहे-हजीं व चश्मे-तर लेकर ।।"

धनी लोग धन देते हैं, गरीब लोग आशीर्वाद देते हैं, जससे तेरा वंश फलता फूलता रहेगा। डाक्टर ने कहा, 'बहुत बातें बनाने की आवश्यकता नहीं, तेरे पास सौ रुपये हों तो रख दे मेज पर, नहीं तो मेरी कोठी से बाहर चली जा, स्वयं नहीं जावेगी तो मेरे नौकर तुमको मार-मार कर बाहर निकाल देंगे।" यह सुनकर बुढ़िया के दिल को चोट लगी। उसको एक चेतावनी याद आई और कहा कि मेरे पास एक चांदी का ज़ेवर पड़ा है, वह बाजार में बेचती हूँ, लगभग ५०) रुपये का होगा, बाकी ५०) रुपये आप अपने पुत्र के सदके छोड़ दें। डाक्टर ने कुपित होकर कहा, "मैं कच्ची कौड़ी कम ो भी नहीं लूंगा, यदि सौ का प्रबन्ध है तो ठीक, नहीं तो ाहर निकल जा।" नौकरों ने बुढ़िया को धक्के मार कर ाहर निकाल दिया। वह निराश होकर घर की ओर जा रही थी कि वही दयालु पुरुष उसको फिर मिल गया। इसने पूछा कि क्या बना ? बुढ़िया ने कहा—

'परदार उड़े फिरते हैं, बेपर का खुदा हाफिज़।
ज़रदार की दुनिया है, बेज़र का खुदा हाफिज़ ।।'

"तेरे दर्द का दिल मुबतला शबोंगम इलाज मैं क्या
न तबीब हूँ कि दवा करूँ, न फकीर हूँ कि दुआ क

"—न मेरे पास दवा है, न ही मेरे पास दुआ है। सर्वव्यापक हैं, सबके अन्तर्यामी हैं। मेरे हृदय में जो या चंचलता है, अथवा निराशा है, वह सब तुम्हारे पर रख दिये देती हूँ। मेरी फरियाद है "तूँ ही तूँ आत्म निवेदन है मेरा। मैं दर-दर तो हो आई अब दर है। न भक्ति आती है, न शक्ति हैं मेरे पास। है, करुण पुकार है। एक ही बीजमंत्र आता है—'तू डाक्टर भी तूँ, रोग भी तूँ, कष्ट भी तूँ, और मैं भी तूँ यह बेखुदी है या अबला की लाज। प्रभु तुम्हारी तुम्हारे चरणों पर है:

'मुझमें समा जा इस तरह, तन-प्राण का जो तौर है
जिससे न फिर कोई कहे, मैं और हूँ तूँ और है।

माँ पूत्र को गोद में लेकर, नाड़ी पकड़कर प्रभु को रही है। सूर्य अस्त हो गया, रात्रि पड़ गई। "त्राहि प्रभु रक्षा करो। दीनबन्धु दीनानाथ, मेरी डोरी तेरे हा हैं:—

"मैं तो हूँ पतित, आप पावन पतित नाथ,
पावन पतित हो तो पातक हरोईगे।
मैं तो महादीन, आप दीनबन्धु दीनानाथ,
दीनबन्धु हो तो दया जी में धरोईगे।
मैं तो हूँ गरीब आप तारक गरीबन,
तारक गरीब हो तो विरद वरोईगे॥

मेरी करनी पै कुछ मुकर न कीजै कान्त,
करुणा निधान हो तो करुणा करोईगे ।।"

जब हृदय की करुण पुकार से प्रियतम को पुकारा, तो अकस्मात् एक बदली आई, नन्हीं नन्हीं बूंदें बरसने लगीं। विश्वास में बहुत बड़ी ताकत होती है विश्वास का नाम ही ईश्वर है।

'जाकर जापर सत्य सनेहू।
सो तेहि मिले न कछु संदेहू।'

—गोस्वामी तुलसीदास

बालक की नाड़ी जो शिथिल गति से चल रही थी, तीव्र गति से चलने लगी। माता की आँखें खुलीं तो कुछ दृष्टि में तो न आया, परन्तु बालक के नेत्र खुले पाये। मुख पर मंद मंद मुस्कराहट थी, परन्तु बुलाने पर भी बोल नहीं पाया तो बुढ़िया के मुंह से बलात् यह शब्द निकले—

"फैलाया जिसने अपना हाथ, तेरे दर पे ओ मालिक,
तुझे देते नहीं देखा, मगर झोली भरी देखी !!"
"अगर आ जाये सुनने पे, पुकारें बेकसों की तू;
तनिक सा रोना भर हैं, तुझे अपना बनाने में।"

यह कह कर माता ने फिर नयन मूंद लिए और रो रुरके पुकार की:—

"कैसे तुम गणिका के अवगुण गिने न नाथ,
कैसे तुम भीलनी के झूठे बेर खाये हो।

कैसे तुम द्वारिका में द्रोपदी की टेर सुनी,
कैसे तुम गज-काज नंगे-पैर धाये हो।
कैसे तुम सुदामा के क्षण में दरिद्र हरे।
कैसे तुम उग्रसेन बन्दी से छुड़ाये हो॥
मेरी बेर ऐती देर, कान मूंद रहे हो नाथ,
दीनबन्धु दीनानाथ, काहे ते कहाये हो॥"
"सक्तदेव प्रपन्नाय, त्वास्मीति च याच्यते,
अभयं सर्व भूतेभ्यो दा दामीति व्रतं मम्।"

भगवान का अपना प्रण है कि जो श्रद्धा से कहदे तेरा हूँ" (आत्म-समर्पण), वह उसे अभय देते हैं। क्यों चराचर जगत में जो कुछ नजर आ रहा है, उस सबमें 'ए देवाः' आविर्भूत है। परा अनन्यता (भक्ति) यही है, चूं परमानंद-प्रेरणा में, परम अनन्य को सारी सृष्टि ही प्रभु दीख पड़ती है:—

'यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति,
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति।
[गीता ६।३०

'सकल बनस्पत में वसन्तर, सकल दूध में घीया।
ऊंच, नीच में जोत समायी, घट-घट माधो जीया॥'

"जग में आकर इधर उधर देखा,
तूँ ही तूँ, नजर आया, जिधर देखा॥"

'सियाराम मम सब जग जानी। करहूँ प्रणाम जोरि जुग पानी।'
—तुलसीदास

भगवद् गीता में स्पष्ट कहा गया है, "एक मेरी शरण आ, मैं तुझे अभय कर दूंगा।"

'मामेकं शरणं व्रज"—[गीता१८।६६]
"जो शरण आवे, तिस कण्ठ लावे,
एह विरद स्वामी सन्दा।"
[गुरुवाणी]

'आहें दुखियों की ज़मी अर्श हिला देती हैं।
अर्श से फ़र्श पर प्रियतम को बुला लेती हैं॥'

" " बुढियां की आंखें खुलीं तो क्या देखती है कि बालक उठ खड़ा है, माता के श्री चरणों में साष्टांग प्रणाम कर रहा है। माता ने उठाकर हृदय से लगाया और कहा—बेटा, यह स्वप्न था या जागृत अर्थात ख्वाब था या बेदारी? बालक ने पूछा—क्यों? माँ ने कहा—"मैं तो तेरे जीवन से निराश हो चुकी थी।" बालक ने कहा, "संसार ने निराश किया परन्तु परम पिता ने तो निराश नहीं किया," बालक के मुंह से निकला—

"न मंहगे पर, न सस्ते पर, न ही मौकूफ़ गल्ले पर।
फतह तो बस उसी की है, खुदा है जिसके पल्ले पर॥"
"सारी खुदाई एक तरफ, नज़रे-इलाही इक तरफ।"

मां ने कहा, कलकत्ता के बड़े डाक्टर ने तो निराश कर दिया था, तो बालक ने कहा

'जो बात दवा से बन न सके, वह बात दुआ से होती है
जब कामिल मुर्शिद मिलते हैं, तो बात खुदा से होती है ॥

[पंजाबी में]

जिसदी लाज रखे तूं सांयी, उसदी कौन बिगाड़े ।
रात अन्धेरी काली दे विच तें सौ सौ नांग लिताड़े ॥
सज्जन दुश्मन वेख न जलदा, कदी न बाजी हारे ।
आंख गुबाला साईं जिस वल होवे, हारे हजार घड़ी अख मारे ।

बुढ़िया के घर मंगलाचार हो गया। फिर लोग बधाई दें लगे । उधर उन डाक्टर साहब का भी एक लड़का था, एम० ए० पास, विवाह हुआ, बम्बई में ससुराल प्रथम बार गया वहाँ से एक्सप्रेस टैलीग्राम (**Express Telegram**) आया कि आपके बेटे का हार्ट फेल (**Heart Fail**) हो गया है। तार के पढ़ते ही डाक्टर साहब अचेत होकर गिर पड़े । सब नौकर-चाकर, पड़ौस के नर-नारी दौड़कर पहुँचे । जब कुछ सचेत हुए तो लोगों ने पूछा कि क्या बात है । डाक्टर साहब बोले, एक बुढ़िया की आह ने मेरे सारे वंश को तबाह कर दिया । पूछने पर तार दिखलायी तो सबको बड़ा शोक हुआ । सबने डाक्टर साहब को बड़ा धैर्य दिया और कहा:—

"धीरज, धर्म, मित्र और नारी',
आपत्त काल परखिये चारी ।"

—रामायण

सबने शोक-हमदर्दी प्रकट कर संतोष जनक विचार दिये, परन्तु उनके मुख से निकला:—

"दुश्मन को भी खुदा न दिखाये पिसर का दाग़।
आंखों को अन्धा करता है नूरे-नज़र का दाग़ ॥"

मैं तो मृत्यु चाहता हूँ, परन्तु यह मृत्यु भी मांगने पर थोड़े ही मिलती है ! पंजाबी कवि ने कहा है :—

"मंगया मौत जे मिलदी होवे, दुखिया पलक न जीवे !
रूनियाँ मृतजे मिलदे होवन, रो पिट तालाब भरीवे !!
जे मुल पुत्र विकादें होंवन, किमू कोई पुत्र सदीवे।
जे झुरियाँ धन मिलदा होवे, निर्धन कोई न थीवे !!
बाख गुवाल एह जा है ठाड़ी, ते कित्थे जा कुकीवे !!"

"—" तो अन्ततोगत्वा डाक्टर अचेत होकर गिरे, मृत्यु शैय्या पर पड़े कहने लगे—

"चीर देती है जिगर एक छूरी होती है !
खौफ कर आह गरीबों की बुरी होती है !!"

इन शब्दों से डाक्टर साहब का प्राणान्त हो गया, तो निर्णय हुआ :—

"जो किसी को इस जहाँ में बेवजह कल्पायेगा।
साफ रोशन है कि वह भी कल कहीं न पायेगा !!"

× × ×

"परार्थे योऽवटं कर्त्ता, तास्मिन स पतति ध्रुवम्"

+ + +

"चारवेद षड शास्त्र में, बात मिली है दोय।
सुख दिये सुख होत है, दुःख दिये दुख होय !!"

अब अन्त में इस उदाहरण और कहानी के साथ उ
संहार करते हैं—

"जीना ऐसा जीना होवे, जी न कोई कलपाये तूं
मरना ऐसा मरना होवे मरकर फिर नहीं आये तूं !!"

ओ३म् शम्

× × ×

जिन्दगी क्या है (What is life?)

"जीना ऐसा जीना होवे, जी न कोई कल्पाये तूँ ।
मरना ऐसा मरना होवे, मरकर फिर न आये तूँ ।।"

इस पर विचार किया जा रहा था। क्योंकि विचार हमेशा मुख्य-विषय (Subject) पर होता है। निर्णय यही निकाला गया है कि "संसार का मनुष्य जब तक स्वार्थी रहता है, तब तक परोपकार की भावना नहीं आती है। जब तक परोपकार की भावना नहीं आती, तब तक मानवता नहीं आती है। यदि संसार का मानव, **यथार्थ-रूप में मानव बन जाये**, तो विश्व के अन्दर शान्ति, अमन हो सकता है। देखने में तो मानव सृष्टि बढ़ती जा रही है, परन्तु जिसमें मानवता के पूर्ण गुण हो, सो तो लाखों में कोई एक मिल पायेगा।"

"दिल बहलता जिससे मेरा, ऐसा कोई न मिला।
बुत के बन्दे मिले, हक़ का बन्दा न मिला ।।
एक जैसे काम हैं, इन्सान और हैवान में।
दर्दमंदी में फज़ीलत, है सिरफ़ इन्सान में ।।"

भावः। । । वही है, जिसमें परोपकार की भावना हो। परोपकार (पर+उपकार) अथवा शिष्टाचार, सदाचार (शिष्ट+आचार; सद्+आचार) दोनों का अन्तर्निहि एवं परस्पर मिलाप ही वह प्रेरणा है, जो अपने अन्दर छिपी शक्ति

का बोध करा देती है। यद्यपि शब्दादि वर्ग से छोटे शब्द हैं, किन्तु प्रचलन या प्रकरण में इनका सही एवं व्यवहारिक पहलू (Practical Attitude) जब समक्ष आता है तो प्रतीत हो जाता है कि यही मानवता की कुंजी है (A key to humanie)। परहित (परोपकार) तभी हो सकता है, जब सदाचार हो, शिष्ट-व्यवहार हो। आत्मशक्ति को समझा गया हो, जीवात्मा का भास हो गया हो। परोपकार का यह कतई अर्थ नहीं कि केवल धन, सम्पत्ति, जायदाद आदि भौतिक पदार्थों द्वारा किया जाये। सत्य तो यह है कि सर्वोच्च परहित आध्यात्मिक भावनाओं (भाव-आत्म-समपर्ण) से होता है। यह मानते हैं कि इस मार्ग में बड़ी कठिनाइयाँ हैं, किन्तु जो राही चल निकला, उसके लिए यह मार्ग अवश्य कल्याणकारी है। मसलन् गलत रास्ते पर जाते पार्थिव को सही दिशा ज्ञान और निश्चित सुमार्ग की ओर अग्रसर करना भी उतना ही महत्वपूर्ण परहित है, जितना भौतिक पदार्थों द्वारा किया गया परोपकार।

स्वामी रामकृष्ण की निम्नोक्ति बड़ी गूढ़ है, समझने के लायक है। पाठक बन्धु ध्यान दें, "किसी भी रीति से क्यों न हो, यदि कोई अमृत के कुण्ड में गिर जाये, तो अमर हो जाता है।" मन, तन, धन, (मन-कर्म-वचन) से जीवादि हित में किया हुआ कोई भी विश्व कल्याणकारी कार्य परोपकार ही गिना जाता है। यह तो परा भक्ति है, और भक्तिः राष्ट्र भक्ति, मातृ-भक्ति, गुरु-भक्ति, पितृ-भक्ति, इष्ट-भक्ति आदि

कोई भी क्यों न हो, बात एक ही होगी। परोपकार के बारे में कई एक तत्वदर्शी विद्वानों ने ऐसी ही सम्यक् धारणा सामने रक्खी है—'ईश्वर ने हमारे हृदय में ऐसी कोई इच्छा उत्पन्न नहीं की है, जिसे हम पूरा न कर सकें। मनुष्य का सुन्दर बलवान शरीर और विवेकवान् मस्तिष्क इसका प्रमाण है कि ईश्वर ने हमें अपने जीवन को महान बनाने के लिए ही धरती पर भेजा है।"

"बुत के बँदे मिले, हक़ का बँदा न मिला," सर है। इसका सत्याभास हो जाने पर ही परोपकार की भावना पैदा होती है। मौलाना रूमी जो एक महान विचारक थे, अपना अनुभव परहित के बारे में बताते है:—"एक सदाचारी (भावः परोपकारी) बिना जबान हिलाये, सैकड़ों मनुष्यों का सुधार कर सकता है, परन्तु जिसका आचरण ठीक नहीं है, उसके लाखों उपदेशों का कुछ नहीं होता।" सच कहा जाये तो 'परहित होना चाहिए,' खाली ऐसा सोच लेने से ही यह पुण्य हासिल नहीं होता है, बल्कि इसके लिए आदर्शमय जीवन होना चाहिए। इसके लिए सारे विश्व में प्रेम का संचार करना पड़ता है। यही है अनन्य प्रेम मार्ग : तलवार की तेज धार।

"सरापा में उसके नजर करके तुम,
जहाँ देखो अल्लाह ही अल्लाह है।"

इतना ही नहीं, माता वसुन्धरा युगों-युगोंसे महान विचारकों दर्शनशास्त्रियों, महापुरुषोंको जन्म देती रही है? किसलिए?

महात्मा बुद्ध, नानक, शंकराचार्य, जायसी, सूरदास,तुलसी
चैतन्य महाप्रभु, स्वामी रामकृष्ण, विवेकानंद सभी तो
पुरुष थे, जिन्होंने मानव को सार्थक मानव बनाने की
की है। उदाहरण के लिए एक अंग्रेज विद्वान 'चार्ल्स कि
महोदय ने एक ही प्रेम पात्र में (भाव: सत्पथ द्वारा)
चराचर अखिल विश्व की प्रेम प्राप्ति (हितकारी-आद
की कल्पना इस प्रकार की है:

> **"Be sure that to have found, the key to one heart, is to have the key to all."**

(भाव: एक को साधे सब सधै, अर्थात एक आदर्श से–कि
एक को अपनाने से सारा विश्व अपना हो जाता है) अ
निर्णय यह हुआ कि सच्चा प्रेम ही सच्चा ज्ञान है एवं सच
ज्ञान (भाव सत्याभास) ही परोपकारी-भावना की जननी
जिससे अन्तार्त्मा नैसर्गिक सुख को प्राप्त होती है। अतः ए
बार फिर वही बात पाठकों के समक्ष दोहराते हैं "परोपका
हीन मानवता कोई मानवता नहीं, बल्कि मानव होने
कोरा आडम्बर है।"

> "परोपकार शून्यस्य धिङ्क मनुष्यस्य जीवितम्।
> यावन्ता पश्वस्तेषां चर्माप्युप करिष्यति॥"

भाव:—जो मनुष्य परोपकार से शून्य है, उसके जीव
को धिक्कार है। क्योंकि पशु हैं, उनके चर्म भी परोपका
करते हैं। एक हिन्दी कवि ने कहा है:—

"पशुओं की खाल सब अपना अपना काम दें,
बकरियों की खाल मश्क पानियाँ पिलाती है ॥
हाथी के दांतो का स्त्रीगण चूड़ा पहिरें—
सखियों में बैठके सुहागन कहलाती है ॥
मृगों की खाल का तपस्वी जन बिछौना करें—
और उनकी शृङ्गी मन योगियों के भाती है।
और सब हाड, चाम अपना अपना कामदें—
मनुष्य की देही किसी काम नहीं आती है ॥"

भावः—यदि मानव में परोपकार की भावना न हो तो, ससे पशु भी अच्छे हैं।

"आदमी होकर अगर हो जाये हैवाँ आदमी।
खाक का पुतला फ़कत है, ऐसा नादाँ आदमी ॥
आदमी अगरचे हज़ारों आदमी कहलाते हैं—।
आदमियत जिसमें हो, है असल इन्साँ आदमी ॥"
चूं इन्सान ना नवाशद, फज़्लो एहसान,
चे फ़रक़ अज़ आदमी ता नक़्शे-दीवार।

भावः—जिस मनुष्य में परोपकार के विचार नहीं, उसमें और दीवार की तस्वीर में क्या अन्तर है ?

"जिसके अन्दर कुछ न हो, मेहरो, मुहब्बत और प्यार,
जान ऐसे आदमी को, नक्श है दीवार का ॥"

निष्कर्ष यह है कि 'जीवन वह है जिससे दूसरे का भला हो।'

आखिर अब प्रश्न है, जिन्दगी क्या है ? इससे पह
कि पाठकगण, 'जीवन क्या है ?' के रहस्य को जानें; कुछ
महापुरुषों, दार्शनिकों, समाज सुधारकों, मनोवैज्ञानिकों ने
अपने-अपने मत दिये हैं, या सूक्ष्म में परिभाषायें दी हैं, इनक
जानना भी जरूरी है:—

"—"**Life is God itself**" (भावः–ईश्वर ही जीव
है)

"—" जीवन, जन्म-मरण तक एक मंजिल है, जिसे सभ
को बाल्यावस्था, तरुणावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था ए
वृद्धावस्था जैसी निश्चित राहों द्वारा तय करना है।

"—" सदाचार एवं कर्म ही जीवन है।

"अपने आपको पहिचानना और लक्ष्य-साधना को पूर
करना ही जीवन है।"

"......" जीवन; 'सत्यार्थ प्रकाश'-सार-निरुपण है।

"......" जीवन संघर्षमय एक विधि है, प्रणाली जो
प्रकृति की मान्यताओं से बंधी हुई है।

"......"जीवन सृष्टि के क्रम-विकास एवं क्रम-संकोच
का सूचक है।

"......" जीवन कुछ करने, कुछ सोचने, कुछ समझने
का नैतिक विषय है, जिसका अन्त मृत्यु है।

"......" जीवन ही प्रेम है, प्रेम ही जीवन है। मृत्यु
अवश्यम्भावी सत्य है।

किसी भी परिभाषा को विचार-शास्त्र की दृष्टि से गलत साबित नहीं किया जा सकता है। परिभाषा चाहे छोटी हो अथवा बड़ी, अवश्य ही, सारमय एवं-अर्थ-पूरक होती है। समालोचना के गुण:दोषों को यदि शामिल न किया जावे तो आखिरी परिभाषा अवश्य ही नैतिक दृष्टि से कुछ वज़नदार है, सरल भी है, गूढ़ भी। सार इसका है :(Love is life and Love is God) :

तर्क शास्त्र के अनुसार :

∵ जीवन ही प्रेम है, प्रेम ही जीवन है।

(अ) ∴ जीवन और प्रेम तत्सम्बन्धित हैं।

∴ प्रेम ही जीवन है।

(ब) ∵ प्रेम ही ईश्वर है, इसलिए जीवन ही ईश्वर है, या ईश्वर ही जीवन है।

तर्क सिद्ध: प्रेम ही जीवन है और प्रेम ही ईश्वर है, जीवन और ईश्वर परस्पर वाचक और वाच्य हैं प्रेम इन्हे मिलाने वाली शक्ति है। उदाहरण के तौर पर इसे यों आसानी से समझा जा सकता है कि जीवन एक त्रिकोण है, प्रेम, प्रेमी एवं प्रेमास्पद्।

चुनान्चे जीवन अवश्य ही गूढ़ तत्व का विषय है। किसी ने "जीना क्या हो"—को कैसे जीवन से सम्बन्धित किया है–

"किसी की मुस्कराहटों पे हो निसार।
किसी का दर्द मिल सके तो ले उधार।
किसी के वास्ते हो तेरे दिल में प्यार।
जीना इसी का नाम है।"

अब साधारण भाषा में (सरल भाषा में) इस गहन-तत्व को पाठकों के समक्ष रखते हैं:—

"एक लड़के से यह सवाल किया।
तूं मुझको बता ज़िन्दगी है क्या।
बोला लड़का अजब हो तुम नादान।
यह मुअम्मा बहुत ही है आसान।
हमसे बच्चे भी जानते हैं इसे—
जिन्दगी खेल है, तमाशा है॥
उसकी मां से मैंने यह सवाल किया॥
तूं बता मुझको जिन्दगी है क्या।
मुस्कराके उसने यह जवाब दिया।
तुझ को इसका नहीं है कुछ भी पता।
जिन्दगी हुस्न व मोहब्बत है—
जिन्दगी शफ़क़तो इनायत है॥
बाप उस लड़के का था वहां मौजूद।
सवाल है एक और जवाब है दो।
तुम भला क्या जवाब देते हो?
उसने संजीदगी से मुझसे कहा,
कुछ भी मुश्कल नहीं है यह उकदा।
फरज़ को अपने तुम बजा लाओ—
जिन्दगी यह है बस सच समझो॥

अभी यह प्रश्नोत्तर हो ही रहे थे कि एक महापुरुष पूर्ण सन्त फकीर आ गये तो उनको प्रणाम करके, सनम्र उनसे

भी यही प्रश्न किया, कि जिन्दगी क्या है ? (what is life ?)
भाव :—मानव जीवन का रहस्य क्या है ? उत्तर नीचे लिखा है।

"आ गया वहां पे एक मरदे खुदा,
उससे मैंने फिर सवाल किया।
बोला साधु वो, नफ़्स को मारो।
औरों के काम को भी संवारो॥
ख़िदमते ख़ल्क ज़िन्दगानी है।
ज़िन्दगी ऐसी जाविदानी है।
मारे गये वह जो जिये अपने लिये।
जीते हैं वह जो मरे औरों के लिए॥
जो कि औरों के काम आते हैं।
वो फ़रज अपना बजा लाते हैं॥"

'यही है इबादत और यही है दीनो-इमान।
कि काम आये दुनियां में इन्सान के इन्सान॥"
'परोपकारः कर्त्तव्यः प्राणैरपि धनैरपि,
परोपकारजं पुण्यं न स्यात् क्रतुशतैरपि॥"

गयी। तब उसकी स्त्री ने कहा—'तुम किसी राजा के पास
जाओ, एक बड़े महान यज्ञ के फल को बेचकर उससे धन
लाओ, जिससे बाल-बच्चों का निर्वाह अच्छी प्रकार से चले
तब बनिया ने जाने की तैयारी करी तो उसकी स्त्री ने मोटी
मोटी रोटी रास्ते में खाने के लिए उसके कपड़े में बांध दी
बनिया तीसरे पहर जंगल में एक कुएं के किनारे पहुँच
और वहां बैठकर सुसताने लगा। वह देखता क्या है कि वृ
की कोटर में एक कुतिया ब्यायी हुई पड़ी है। नौ उसके बच
हैं, वे उसको चूस रहे हैं। वह तीन दिन की भूखी है। क्यों
तीन दिन से बराबर वर्षा हो रही थी। कहीं को वह
नहीं पाई। अतिकृश और दुर्बल हो गई थी, सो उसमें क
जाने की सामर्थ्य नही थीं। बनिये का मन द्रवीभूत हो गय
उसने एक-एक करके सब रोटियाँ उस कुतिया को खिला
और आप भूखा रह गया। कुतिया जी गयी। उसके जीने
उसके सब बच्चे भी जी गये।

बनिया दूसर दिन राजा के पास पहुँचा और एक बड़े
के फल को बेचने को कहा। राजा ने ज्योतिषी को बुला
पूछा—तुम प्रश्न देखो, इसने कितने यज्ञ किये हैं। उन स
किसका फल उत्तम है? उसी को हम खरीद लेंगे। ज्यो
ने कहा—इसने रास्ते में कुतिया को रोटियां खिलायी
उससे जीवों के प्राण बचे हैं। वही इसके सब यज्ञों में से म
यज्ञ है। उसके फल को यदि यह बेचे तो तुम खरीद लो।

राजा ने बनिया से कहा। बनिया ने कहा कि उस

के फल को मैं नहीं बेचूँगा। और किसी बड़े यज्ञ के फल को खरीदो, जिस पर मेरा धन लगा है। तो राजा ने उसे दुखी देख, रुपये देकर विदा किया और किसी यज्ञ के फल को नहीं खरीदा।

तो निर्णय हुआ, दया, परोपकार का कितना अच्छा फल है। परोपकार वही कर सकता है, जिसमें अपना स्वार्थ न हो। यदि किसी व्यक्ति में सत्य, पवित्रता और निस्वार्थता, ये तीन बातें विद्यमान हैं, तो इस ब्रह्माण्ड में ऐसी कोई शक्ति नहीं जो उसका बाल भी बांका कर सके।

इन तीनों गुणों से सुसज्जित रहने पर मनुष्य सारे जगत का सामना कर सकता है। महान बनो। त्याग बिना कोई महान कार्य सिद्ध नहीं हो सकता। अपने ऐशो-आराम को निछावर कर मानव शृंखला का एक सेतु निर्माण कर डालो, ताकि उस पर से होकर लाखों जीवात्मायें इस भव-सागर को पार कर लें। यही मानव-जीवन का रहस्य है। अब उपसंहार करते हैं—

"जीना ऐसा जीना होवे, जो न कोई कल्पाये तूं।
मरना ऐसा मरना होवे, मरकर फिर न आये तूं॥"

ओम् शम्

× × +

मृत्यु कैसी हो ?

जीना ऐसा जीना होवे, जी न कोई कल्पाये तूं।
मरना ऐसा मरना होवे, मरकर फिर न आये तूं॥

"जीना कैसा हो ?" यह तो पाठक गण पढ़ चुके हैं सुन्दर मानव जीवन की सार्थकता के लिए फिर यही दोहरा हैं—"ईश्वर से प्रेम करना है, अल्लाह से मुहब्बत करनी है तो उसका रास्ता यही है कि अल्लाह के बँदो से, प्रभु की सारी सृष्टि से प्रेम करो।" अब मरना (भावः मृत्यु) कैसा हो, इसपर पाठक बन्धु ध्यान दें। मरने-मरने में अन्तर है। 'महापुरुषों ने मृत्यु को तीन प्रकार का ध्रुव-सत्य कार्थत किया है। [अ] काल-मृत्यु (निश्चित समय पर) [ब] अकाल मृत्यु (समय से पहिले:अनायास) (स) ऐच्छिक मृत्यु। इन सभी में काल मृत्यु के पश्चात ऐच्छिक मृत्यु ही उत्तम मानी गयी है। भीष्म-पितामह को ऐच्छिक मृत्यु हेतु ही शर-शय्या पर सोना पड़ा था (महाभारत)। "मृत्यु तो अमृतमय संगम है, चिर सनातन धर्म है।" उर्दू शायर 'जिगर' ने मृत्यु के बारे में क्या विचार रखा है :—

"मौत आयी, यार का पैगाम आ गया।
दिल को सुकून, रूह को आराम आ गया॥"

यह तो निर्णय है, श्री गीताजी के अनुसार—"जात हि ध्रुवो मृत्युः।" जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु अवश्य

एक उर्दू-भाषा के कवि कहते हैं :—

"हो बादशाहे मुल्क या दरवेश वेनवां ।
जरदार हो, अमीर हो मुहताज या गदा ।।
यकसाँ औजिया इसे है, यकसां है अंबियां,
कोई ऋषि बचा है न कोई मुनि बचा ।।
उसकी सदाये-गाम यह नजदीक-दूर हैं ।
आया है जो यहाँ उसे जाना जरूर है ।।"

एक और महापुरुष कहते हैं:—

"दुनिया में अपना जी कोई बहलाके मर गया ।
दिलतंगियों से कोई और उकता के मर गया ।।
आकिल था वह जो आपको समझा के मर गया ।
बेअक्ल छाती पीट के, घबड़ाके मर गया ।।
दुःख पाके मर गया, कोई सुख पाके मर गया ।
जीता रहा न कोई, हर इक आके मर गया ।।"

भाव यही है कि मृत्यु अवश्यम्भावी है । क्योंकि वेदों में इसे चिन्त्य, नित्य एवं सत्य आदि विशेषणों से सम्बोधित किया गया है । जीवन की असारता का प्रतीक यह मृत्यु ही है । संसार में महापुरुषों का अवतरण प्राणियों को समझाने के लिए ही युगों-युगों से होता चला आ रहा है । यह महापुरुष, यह उपदेशक (आकिल) कौन हो सकता है ? अवश्य ही कोई प्रभु-प्रेमी होना चाहिए । क्योंकि प्रभु प्रेमी के सत्संग मात्र से प्राणी के अन्दर त्याग भावना पैदा हो जाती है, उसकी हर श्वांस यही मंत्र उच्चारित करती रहती है :—

"मालिक तेरी रज़ा रहे और तू ही तू रहे।
बाक़ी न मैं रहूँ, न मेरी आरज़ू रहे॥
जब तक कि तन में जाँ, रगों में लहू रहे।
तेरा ही जिक्र हो और तेरी जुस्तजू रहे॥"

यही रहस्य के शब्द हैं—"आकिल था वह जो आप
समझाके मर गया।" कबीर साहब कहते हैः—

'जिस मरने ते जग डरे, मेरे मन आनन्द।
मरने ही ते पाइये, पूरन परमानंद॥
मरता-मरता जग मुआ, मर भी ना जाने कोय।
ऐसा मरना मर रहो, बहुर ना मरना होय॥"

(भावः 'मरकर फिर न आये मृ

जिस प्रकार रावण की मृत्यु हुई। वैसे तो भारत के
कोने में विजय-दशमी (दशहरा) पर रावण का बुत बना
लोग जलाते हैं। परन्तु यदि गहरी दृष्टि से देखा जाये
रावण जैसी मृत्यु किसी भाग्यशाली की होगी। कारण,
रावण मृत्यु शय्या पर पड़ा था, रोम-रोम से भगवान
के बाणों से रक्त बह रहा था तो प्रभु श्रीराम जी ने
विचार किया कि रावण से अन्तिम भेंट अवश्य हो। भग
राम रावण के निकट चले गये—जब रावण ने देखा प्रभु
आ रहे हैं तो मनमें बहुत प्रसन्न हुआ। विचारा कि ऋ
लोग हज़ारों वर्ष तक तप करते हैं, फिर भी अन्त में प्रभु
दर्शन नहीं कर पाते। मैं कितना भाग्यशाली हूँ कि मय
पुरुषोत्तम राम स्वयं मेरे निकट आ रहे हैं। मैं उनके पा

र्शन करके प्राणों का परित्याग करूँगा—

'जन्म जन्म मुनि यत्न कराहीं ।
अन्त राम कहिं आवत् नाहीं ॥'

"खुद ही खिच आया है, बीमार के नज़दीक तबीब ।
पास प्यासे के आया है कुआं, सद् शुकर नसीब ॥

जब श्रीराम आ ही पहुँचे। रावण के रोमांच हो उठा। गद्गद् वाणी से बोला, आये होराम ? प्रभु—बोले-आये हैं। रावण ने कहाः—अभी तो कुछ समय पूर्व आप मुझपर तीरों को (बाणों की) बौछार कर रहे थे, अब किस भाव से निकट आये हो ?

प्रभु बोले—"अब तुम संसार से विदा हो रहे हो। अन्तिम दर्शन—मिलाप हो जावे। अब वैमनस्य नहीं रहा।" एक फारसी शेर स्मरण हो आया, पाठक ध्यान से देखें—

"ए दोस्त गर जनाज़ाऐं दुश्मन च बगुज़री ।
शादी मकुन कि या तूँ हमीं माज़रा स्वद ॥"

भावः—ऐ सज्जन यदि शत्रु की अर्थी आपके सम्मुख गुजरे तो तूं प्रसन्न न हो, क्योंकि एक दिन तेरी भी यही गति होनी है। इस दृष्टिकोण से प्रभु राम नें कहा —"अब वैमनस्य नहीं रहा।"

रावण बोलाः—प्रभु, आप अन्त के समय मेरे समीप खड़े हो। एक प्रश्न करता हूँ, कृपया उत्तर दें।

प्रभु बोलेः—आप तो मृत्यु शय्या पर पड़े हैं, क्या प्रश्न करेंगे ?

रावण बोलाः—हे राम, मैं मरा हुआ भी सिंह हूँ औ
साहस रखता हूँ, प्रश्न अवश्य करूँगा।

तो प्रभु बोले—प्रश्न करो। रावण बोला—प्रश्न यह
कि आपकी विजय हुई है या मेरी? (भावः—आपकी जी
हुई है या मेरी)। भगवान राम विचार में पड़ गये कि क्य
उत्तर दें। यदि कहते हैं कि मेरी विजय हुई तो अपने ही मु
से अपनी प्रशंसा करनी उचित नहीं। यदि कहते हैं कि तेर
विजय हुई तो फिर मिथ्या उच्चारण हो जायेगा। तो-
"मौनं सर्वार्थ साधनम्।" (भाव—सरकार ने मौन साध ल
और कोई उत्तर नहीं दिया)।

रावण ने कुछ समय तो आत्म-दमन किया कि अभी उत्त
मिलता है। किन्तु प्रत्युत्तर नहीं मिला तो रावण बोला—
"संसार के भगवान होकर मेरे प्रश्न का उत्तर नहीं दे सके
शीघ्र उत्तर दें।"

सरकार बोले—हे रावण, तेरे प्रश्न का कोई ठीक उत्तर
आ नहीं रहा। बुद्धि काम नहीं करती कि क्या उत्तर दें। इस
लिये मौन साधली। रावण गर्जना करके बोला—'यदि
आप उत्तर देने में असमर्थ हो तो मैं स्वयं इसका उत्तर दूँ?'

प्रभु बोले—"तू ही उत्तर दे।"

तो रावण बोला—हे राम, यदि तुम्हें अभिमान हो गया
हो कि मैंने रावण पर विजय पायी है तो गलत है। आपने
मुझ पर विजय नहीं पायी, अपितु मैंने आपपर विजय पाई है।
(तुमने मुझको नहीं जीता, मैंने तुमको जीता है)। यह सुनकर

प्रभु राम बोले—"रावण परिवार तेरा सब नष्ट हो गया। लँका जल गयी। स्वयं मृत्यु-शय्या पर पड़ा है। तुमने किस प्रकार विजय पाई है ?"

रावण बोला—सरकार सब कुछ जानते हुए भी यदि मेरी परीक्षा लेना चाहते हो, तो सुनो। डंके की चोट से कहता हूं कि विजय मेरी हुई है। कारण—

'मोरि जीत तुम मोरि पुर, सके ना पायूँ पाय।
तोरि जीत हम तोरि पुर, चले निशान वजाय ॥'

भाव:—हे राम, मेरे जीते जी आपने मेरी लंका नगरी में चरण तक नहीं रखा। और आपके जीते जी मैं आपकी नगरी में ढोल बजाकर जा रहा हूं। कोई शक्ति हो तो रोक लो !

तब श्री राम मुस्करा कर बोले—हे रावण, क्या तू अब मेरी नगरी अयोध्या पर कब्जा करने जा रहा है ?

रावण ने हँसकर कहा—सरकार ! आपकी नगरी अयोध्या नहीं। जो वास्तव में, यथार्थ रूप में आपकी नगरी है, वहाँ जा रहा हूँ।

प्रभु बोले—कौन सी नगरी है वह ?

रावण ने कहा—जान-बूझकर फिर मेरी परीक्षा ले रहे हो। आपकी नगरी है वैकुण्ठ धाम। गीता में नारायण कहते हैं—

'यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम्'।'

भाव:—जहाँ जाकर फिर नहीं लौटना होता। वह मेरा परम
धाम है। एक शेर लिखते हैं—

'कूचाये दीदार में गर पहुंचना मुश्किल है बहुत।
पहुँच कर फिर लौट आना, उससे भी दुश्वार है॥'

भाव:—मैं आपके उस परम धाम को जा रहा हूँ। तो प्रभु
राम मुस्कराकर बोले—अन्त के समय तू जीत गया है
अब तू मेरे परम धाम को ही जा रहा है।
तुलसीदास ने कहा है —

'खीझे ते मुक्ति देई, रीझे ते दई लंक।
अन्ध धुन्ध सरकार है, तुलसी भजो निशंक॥'

भाव यह निकलता है कि रावण जैसी मृत्यु भी किसी भाग्यशाली को प्राप्त होती है। जीने मरने का रहस्य आपके समक्ष रखा है। शुरूआत तेरे रोने पर हो और अन्जाम (परिणाम) तेरे हँसने पर हो।

'कबीर जब पैदा हुए, जग हँसे तू रोये।
ऐसी करनी कर चलो, तुम हँसो जग रोये॥'

श्री महात्मा गांधी का शरीर जब शान्त हुआ तो सरदार पटेल ने रेडियों पर कहा था—'जब महात्मा गांधी जी की मृत्यु के पश्चात मैंने उनके दर्शन किये तो ऐसा प्रतीत होता था कि उन का मुख खिला हुआ है (भाव—हँसते हुए प्राणों का परित्याग किया है)। परन्तु जब अरथी निकली तो सब जनता एवं सब नेता रो रहे थे। यह है संसार से प्रस्थान

करने का आदर्श। तो हमें जीना भी सीखना है, मरना भी सीखना है। अब उपसंहार करते हैं :—

"जीना ऐसा जीना होवे, जी न कोई कल्पाये तूँ।
मरना ऐसा मरना होवे, मर के फिर न आये तूँ॥"
तू रोता हो सब हँसते हो, जिस वक्त यहाँ पर आये तू।
सब रोते हों तू हँसता हो, जिस वक्त यहाँ से जाये तूँ॥"

ओम् शम्

× × ×

"आंखें खोल, मृत्यु से न डर"

हे प्रभु, हे प्रभु हे प्रभु हे प्रभु ।
तूं ही तूं, तूं ही तूं, तूं ही तूं !!
लब पे तेरा नाम, दिल में यह है जुस्तजू ।
तेरा जिकर ही गाता फिरूं कूबकूं !!
हे प्रभु, हे प्रभु···। तूं ही तूं ··तूं ही तूं !!
तेरी चर्चा सुनूं, तेरी ही गुफ्तगूं ।
देखूं जिस ही तरफ, होवे तूं रूबरू !!
हे प्रभु, हे प्रभु ··। तूं ही तूं···!!
समझूं यकसां मैं, हो आशना या अदू ।
ग़ैरियत की न रहे, मेरे दिल में बू !!
हे प्रभु, हे प्रभु···। तूं ही तूं···!!
छूटे दिल से बदी, मैं बनूं नेक खूं ।
बस यही है मुनि को, प्रभु आरजू !!
हे प्रभु, हे प्रभु ··। तूं ही तूं...!!

कितना आदर्श प्रेम है, उच्च लगन है । कितनी उ ईश्वरीय सत्तावान प्रेरणा है, भावना है । यही वह ज्यो है, जिसकी उपस्थिति भागवत धर्म की प्रेरणा देती है । य वास्तव में विश्व का संविधान है, सालोक्य आचरण है। क्यों किसी राष्ट्र का संविधान उसका नैतिक आचरण होता है विश्व-शासन का शासक है भागवत् धर्म । यही प्रकृति का संच

लन करने वाली अनंत, अगोचर शक्ति है। वह क्षुद्र से क्षुद्र एवं वृहद् से वृहद् की मौन एवं वाचक-भाष्य-भावना है जो सभी का मार्ग दर्शन करती है। उसकी प्रार्थना करना, उसकी शक्ति का समाधान करना ही उसके गुणातीत आदर्शों का निरुपण करना है। क्योंकि वह अवश्य सुनता है—

'सच्चे दिल से जो कोई अपनी दुआ करता है।
उसको मंजूर यकीकन यह खुदा करता है।
ग़ैब से आयी सदा मेरी दुआ के बदले—
तूं तो इन्सान है, वो चींटी की सुना करता है!'

मानव-जीवन के रहस्य पर विचार चल रहा था। जीवन तथा मृत्यु क्या है?—

'जीना ऐसा जीना होवे, जी न कोई कल्पाये तूं।
मरना ऐसा मरना होवे, मरकर फिर ना आये तूं॥'

अक्सर जन-साधारण अपनी आँखों से ग़फलत की पट्टी हटाये बगैर न्याय-असगत तर्क देते हैं, हम गृहस्थी हैं, हमारे हक़ में तप, वैराग्य नहीं। हमारे हक में तो भौतिक जीवन ही सार्थक है। यह तर्क कोई इतनी वजनदार मिसाल नहीं है। ठीक उसी प्रकार जैसे कच्चा आम अचार बनाने के काम आता है, और पका हुआ मीठा होता है—रसास्वादन में उपयुक्त माना गया है, और रस निकल जाने के बाद छिलका अलग, गुठली अलग। जहाँ धुँआ होगा वहाँ आग अवश्य होगी। जरूरत होती है वायु के एक झौंके की, जो उस आग को भड़का दे। यह वायु का झौंका है—आत्म ज्ञान, साँसारिक

विक्षेप (भाव-मोह-माया का त्याग)। जबतक आध्यात्मिक भावना उदय नहीं हुई है; जब तक भौतिक सुखों क स्वाद् ही अधिक मिठास वाला लगता है। क्योंकि जैसे आयु को पांच हिस्सों में (भावः बाल्यावस्था, तरुणावस्था, युवावस्था, प्रौढ़ावस्था एवं वृद्धावस्था), जीवन के सफ़र को तीन प्रक्षेत्रों में [भावः—जन्मस्थल, कर्मस्थल, मृत्युस्थल] एवं मानव-चेतना को तीन रूप, तीन स्थिति एवं तीन प्रवृत्तियों में बांटा गया है, पाठक नीचे दिये चित्र को समझें।

चेतना :
- १. विकृति : तामसी = आसुरी (हैवान एवं शैतान)
- २. प्रकृति : राजसी = मानवी (इन्सान)
- ३. *संस्कृति : सात्विकी = दैवीय (ईश्वरीय, देवता आदि)*

(भाव : तीनरूप = आसुरी, मानवी, दैवीय; तीन स्थिति : तामसी, राजसी, सात्विकी और तीन प्रकृत्तियां; विकृति, प्रवृत्ति, संस्कृति आदि)। इसी उदाहरण के अनुसार ही मानव जीवन या व्यक्तित्व के तीन अंग देख जाते हैं, व विचारणीय हैं—विचार साधना एवं कर्म। फलतः मनुष्य विचारक, साधक और कर्मठ कहलाता है। साधना और कर्म में अन्तर है। कहने का सारांश भाव यह है कि मनुष्य को भौतिक एंव आध्यात्मिक, दोनों पहलू ही जरूरी हैं· किन्तु खेद यही है कि भौतिकवादी समय में, बौद्धिक संकट में, जन समुदाय जा कहां रहा है ?

मानव शरीर योग और मोक्ष के लिए मिला है, पर जीव

भोग की ओर तो अग्रसर हो रहा है, और मोक्ष की ओर ध्यान नहीं देता, यही प्रमाद है। सृष्टि अनादि है, जिसमें परिवर्तन होते रहते हैं। विद्यमान वस्तु उत्पत्तिहीन मानी जाती है, क्योंकि संसार का अटल विश्वास, कार्य और कारण से बँधा हुआ आ रहा है। सृष्टि कर्मशील है निरन्तर कार्यों में हिस्सा लेती है। वैयक्तिक सृष्टि से वैयक्तिक कर्म होता है, जितना उपयोग सीमित है, अविस्तीर्ण एवं वैयक्तिक है। सामूहिक कार्यों का परिणाम ही सामूहिक (समष्टि) सृष्टि की उत्पत्ति होती है। सृष्टि के परिवर्तन तीन हैं, जो नित्य हैं, सनातन हैं एवं अवश्यसम्भावी हैं। (सृष्टि का होना, सृष्टि का प्रकाश में आना, एंव प्रलय के अतीत गर्भांचल में समाविष्ट हो जाना आदि।) इसीलिए तो प्राणी चौरासी लाख योनियों में भटकता रहता है।

"लाख चौरासी जोन में, मानुष देह प्रधान।
बिना भजन भगवान के, चला अकारथ जान !!"

इस संसार में जितने जीव जन्तु हम देख रहे हैं, जड़ अथवा चेतन, स्थावर और जँगम, सबकी उत्पति अण्डज, जेरज, स्वेद्ज, और उद्भुज चार से है, जिनको साधारण बोल चाल में चारों खानी कहा जाता है।

(१) अण्डजः—यह अण्डे से उत्पन्न होने वाले जीव हैं। इनमें अधिक गणना नभचर (आकाश में उड़ने वाले जीव) पक्षी, परिन्दे आदि हैं।

(२) जेरजः—यह जेर से पैदा होते हैं—जैसे मनुष्य, पशु, चौपाये आदि।

(३) स्वेदज:—यह पसीने से उत्पन्न होने वाले जीव मक्खी, मच्छर, पिस्सू, आदि ।

(४) उद्भुज:—इनकी उत्पति धरती से है जैसे वृक्ष, स बनस्पति तथा पहाड़ ।

इन चारों खानियों में ही चौरासी लाख योनियाँ हैं।

भोग-योनि लेकर उत्पन्न होना सभो प्राणियों (सांसारिक का लक्षण है। परन्तु मानव योनि को भोग-विलास एवं विका की योनि ही केवल नहीं माना गया है। स्मृतिकारों का कथ है कि "भोग के सम्बन्ध में मानव परतंत्र है, किन्तु क करने के लिए स्वतंत्र है।" अतः उसे भोग एवं कर्म का प्रचल एवं प्रकरण (समय-वातावरण) के अनुसार अधिकार प्राप्त है। सवाल यह है कि वह कर्म कोन सा है, जो वास्तविक कर्म है मनोवैज्ञानिकों एवं दार्शनिकों ने मानव की समस्त काम-नाओं को चार वृहद (बड़े) समूहों में (धर्म, अर्थ काम एवं मोक्ष में) में विभाजित करने हुए जीवन-मीमासां को तीन प्रकार के कर्मों में नामीकरण (भाव-नाम रखा है) किया है।

(१) संचित:—कर्मों का समृष्टि वादी संग्रहालय है, इसमें नाना प्रकार के शुभाशुभ कर्मों का संचय मान होने का लक्षण है उदाहरण के रूप में—सत्य कर्म एंव प्रमादवश किया हुआ कर्म। सभी विद्वान जो पूर्व-सस्कार सिद्धान्त को मानते हैं, पूर्वाभास कर्मों को इसी श्रेणी में रखते हैं!

(२) प्रारब्ध:—संचित कर्मों से कुछ पुण्य एंव पापों को

लेकर शरीर का निर्माण किया जाता है, वह प्रारब्ध कर्म कहलाते हैं। जो भोग मात्र से नष्ट होते हैं और इसके अलावा कोई उपाय नहीं है।

(३) क्रियावान : जो कुछ कर रहे हैं, उन्हें क्रियामान (वर्तमान) कर्म करते हैं, यही भविष्य में संचित कर्म में परिवर्तित होते रहते हैं।

अतः निर्णय यह हुआ कि इन योनियों में मनुष्य योनि सबसे विशेष है। शास्त्रकारों ने तो मनुष्य का शरीर देवताओं से भी उत्तम माना है। रामायण में आता है—

'बड़े भाग्य मानुस तन पावा।
सुर दुर्लभ सद् ग्रन्थन गावा॥
साधन-धाम मोक्ष कर द्वारा।
पाये न जिहि परलोक सिधारा॥'

प्रमाण है कि मनुष्य को इतने पदार्थ जन्म से प्राप्त होते हैं। फलतः मानव-तन का इतना महत्व है।

(१) शरीर (स्थूल, सूक्ष्म और कारण—ये तीन शरीर)
(२) इन्द्रियां (पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ)
(३) मन (विचार एवं मनन करने का साधन)
(४) बुद्धि (ज्ञान-संग्रहालय)
(५) आत्मा (संचालक शक्ति, क्रियावान्)

(६) परमात्मा (विश्व का संचालन कर्त्ता); विश्वकर्मा-गुण—"(Creator of all create)" इन सभी में प्रथम दो

(भौतिक गुणों वाले तत्व), तीसरा-चौथा (संकल्प-विकल
एवं पांचवा छटा, (आन्तरिक व स्वदर्शन) आदि विशे
से विद्वानों ने सजाया है। गीता में श्री कृष्ण ने कर्मों
सम्बन्ध संकल्प-विकल्प से, और विकर्म-समूह को स्वदर्श
सम्बन्धित बतलाया है ! उनकी शक्ति-वाणी के अनुसार-

(१) सकाम कर्मः—फल की इच्छा रखते हुए
(राजस, तामस, एवं सात्विक)

(२) निष्काम कर्मः—फल की प्राप्ति की इच्छ
ईश्वरीय सत्ता पर छोड़ते हुए, किये हुये कर्म ! इस
में 'निष्काम' विशेषण है, कर्म पद के महत्व को दिखात
ठीक जिस प्रकार महात्मा गांधी का 'अहिंसात्मक अस
शब्द में 'असहयोग' की अपेक्षा 'अहिंसात्मक' |
महत्वपूर्ण है । गीता श्रुति स्पष्ट कहती है कि
'कर्म' 'स्वधर्म' के अर्थ में प्रयोग हुआ है । चित्त
के लिए जो-जो कर्म किये जाते हैं, उन्हें विकर्म
मुख्य विषय का निर्णय हो गया कि मानव में इन्द्रि
संचालन मन द्वारा होता है। मन को बुद्धि द्वार
ज्योति या शक्ति प्राप्त होती है। बुद्धि को प्रकाशवा
है जीवात्मा (आत्मा) और आत्मा के अन्दर ही
सर्वाधार रूप में व्याप्त रहता है, विराजमान र
मनुष्य को इसी गहरायी में डूबना चाहिए, इसे (
तत्व) अपने अन्दर देखना चाहिए ! विश्व मे
जानने योग्य यही परम वस्तु है। यही आत्म दर्शन

है । 'आत्मा' का अर्थ (अत्=सातत्यगमने) सतत् संचालन करने वाला है । इसका अनुभव सभी को प्राप्त हो सकता है । क्योंकि पार्थिव शरीर में रहकर यह सदैव हलचल करता रहता है । इसी 'हलचल' या कंपन को समझना ही 'आत्म विलोचन' करना है और इसीसे 'हर में हरि' निहारा (देखा) जा सकता है । फलतः श्रेष्ठ कर्म करना, श्रेष्ठ विचार करना, समय पर अपने आप को पहिचानना ही मनुष्य उन्नति का उच्च साधन है, यही परम गति है । इसीलिए तो महापुरुष समय समय पर चेतावनी देते रहते हैं कि "हे मानव, अपनी आंखें खोल, मृत्यु से न डर, बल्कि सत्य को पहिचान और उसका चिन्तन कर ।"

"करनी करलो यह अवसर है,
अब आलस्य और बहाना क्या ?
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया—
फिर रोना और पछताना क्या ?"

"वक्त पर काफी है कतरा, अब खुश अंजाम का ।
जबकि खेती जल चुकी तो, फिर बरसा किस काम का !!"

का बरसा जब कृषी सुखाने ।
समय चूकि पुनि का पछताने !! (रामायण)

"मरते-मरते कह गया लुकमान सा दाना हकीम ।
दर हकीकत मौत की यारो दवा कुछ भी नहीं !!
तोशाऐ उकबा का कुछ सामान करले ऐ अज़ल–
फिर ना कहना बाद में मुझसे हुआ कुछ भी नहीं !!"

"—————" एक पथिक मार्ग भूलकर बन निकला। चलते-चलते थक गया। भूख, प्यास ने भं. किया। बस्ती कोई उसे नजर नहीं पड़ी। बड़ी व्याकुलता तीव्र गति से चल रहा था कि कहीं नगर पहुँच कर भूख, प्य और श्रम को दूर करूँ। अकस्मात् एक महापुरुष सन्त सम। में बैठे नजर पड़े तो भाग कर चरणों में गिरा। अनुम लगाया कि अब कोई बस्ती अवश्य ही निकट होगी।

विह्वल चित्त से प्रार्थना की, भगवन्, आप कृपा करके मु बस्ती का मार्ग बतायें। सन्त ने जिधर मरघट था, उधर भे दिया कहाकि उधर बस्ती है। वह बेचारा उधर भागखड़ा हुआ परन्तु बस्ती का कोई चिन्ह उसे दृष्टि गोचर न हुआ। ज श्मशान भूमि के निकट गया तो क्या देखा कि एक चिता जल रही है। निराश होकर लौटा। दुःखी होकर सन्त जी कहा, महाराज मैने बस्ती का मार्ग पूछा था कि मरघट का। महापुरुष बोले—बस्ती का। तो पथिक बोला—फिर आपने मुझे किधर भेजा? सन्त बोले—बस्ती की ओर।

पथिक ने कहा :—'भगवन् उधर तो मरघट है।'

सन्त बोले— यही बस्ती है।

राही ने कहा :—वहां मैं स्वयं देख आया हूं, श्मशान भूमि है और चिता जल रही है। वह तो मरघट है।

सन्त बोले—'जिसको तुम मरघट समझते हो, हम उसको बस्ती समझते हैं। कारण कि हम बहुत समय से यहां रहते हैं। देखते हैं कि बस्ती के लोग उधर से उठकर इसी बस्ती

अन्त में जाकर बस रहे हैं। सो वास्तव में बस्ती यही है।

पथिक को ज्ञान हो गया। मन में वैराग्य हो गया। प्रेम पथ पर चलकर अपने लक्ष्य की प्राप्ति की। क्योंकि आत्मा का सम्बन्ध नित्य, अमर है। आश्चर्य की बात नहीं, जो जन्मा है, वह मरेगा ही। यदि कोई अजन्मा है तो अमर भी है। जहाँ सृष्टि है, वहां प्रलय भी है। आत्मा अजन्मा है, इसलिए अमर है, अविनाशी है।

निष्कर्ष यही है—'मृत्यु को याद रखो, परन्तु उससे डरो नहीं।'

"दो बातन् को भूल मत, जो चाहत कल्याण।'
नारायण इक मौत को, दूजे श्री भगवान॥"

"————" एक सन्त त्यागी सर्दी के दिनों में केवल एक कम्बल ओढ़े जा रहे थे। मार्ग में एक नदी आ गई। सन्त ने कम्बल किनारे पर उतार कर रखा और नदी में गोता लगाया, तो एक डाकू राहगीर गुजरा। वह कम्बल उठाकर चम्पत हो गया। साधु ने देखा तो कम्बल नहीं। दूर से देखा कोई नगर की ओर कम्बल लिए भागा जा रहा है। डाकू युवक था, साधु वृद्ध था। उसके पीछे भागे। परन्तु वह नगर में घुस गया। सन्त ने सारा नगर छान मारा। कोई मुहल्ला, बाजार नहीं छोड़ा, घर पर जाकर देखा, परन्तु वह कहीं न मिला। अन्त में साधु, थककर, मरघट में आकर बैठ गया। किसी व्यक्ति ने पूछा—महाराज यहां कैसे बैठे हो? परेशान (भाव-उदास) दीखते हो। क्या कारण है?

"सो परत्र दुख पावहीं, सिर धुन-धुन पछताहिं।
कालहिं कर्महिं, ईश्वरहिं, मिथ्या दोष लगाहिं!!"

गुरुवाणी में आता है :—

'गुरु सेवा ते भक्ति कमायी।
तब एह मानुष देही पायी !!
इस देही को सिमरहिं देव।
सो देही भज हरि की सेव !!'

पांच प्रकार की मुक्ति शास्त्रकारों ने बतायी है (१) सालोक्य (२) सामीप्य (३) सारूप्य (४) सायु और (५) कैवल्य।

प्रथम चार प्रकार की मुक्ति तो देवताओं को प्राप्त है परन्तु कैवल्य मोक्ष उनको प्राप्त नहीं। तो वह भी चाहते कि हमें भी मनुष्य चोला मिले और साधन कर साध्य प्राप्ति कर मोक्ष मिले। यह मानी हुई बात है कि मनुष्य अप स्वरूप को भूला हुआ है। यदि इस अनमोल शरीर को पाक भी केवल रोटी कपड़ा ही लिया है तो समझो कुछ भी न लिया।

हमारा यह भाव नहीं कि शरीर को रोटी कपड़ा न दिय जाय। रोटी कपड़ा भी दो, परन्तु साथ-साथ जिस लि मनुष्य शरीर मिला है, उस रहस्य को भी जानो। जै माताएँ चरखे को तेलादि देती हैं, वह चरखे के लिए नहीं अपितु चरखे से काम लेना चाहती हैं सूत कातने का। तां वाले घोड़े को दाना, भूसा, घासादि देते हैं तो केवल घोड़े

लिए नहीं देते, घोड़े से काम लेना है तांगा चलाने का (इस-लिए देता है)। रेलवे-कर्मचारी इंजिन को कोयला-पानी देते हैं। सब प्रकार से सुरक्षित रखते हैं। सफाई करते हैं। इंजन के लिए नहीं, इंजिन से काम लेना है गाड़ी के खींचने का, इसलिए सब किया जाता है। निष्कर्ष यह है कि शरीर को रोटी कपड़ा भी दो, परन्तु साथ ही इससे काम भी लो, जिसलिए यह मिला है। अर्थात अपने स्वरूप का साक्षात्कार भी करो।

'न हरि भूलो, न जग छोड़ो, कर्म करो जिन्दगानी में।
रहो दुनिया में ऐसे, ज्यों कमल रहता है पानी में!!
यह दुःख-सुख, ऊँचापन, गुज़ारो शादमानी में।
सिला यह है रहोगे तुम, सरूरे जाविदानी में!!
इधर हो याद प्रीतम की, उधर दुनिया का धन्धा हो।
इधर हो देश की सेवा, उधर दुनिया का बन्दा हो!!'

आसक्ति या ममता का रहना ही प्रमाद है—मृत्यु के समान। और निष्काम ममता ही जीवन है (Attachment is death and non-attachment is life.)

यदि ऐसा न किया गया तो अन्त समय सिर धुन-धुन कर पछताना होगा। यही समय है, इस पर विचार करें। बाल्यावस्था खेल-कूद में गई। युवावस्था विषय विकारों में गई। वृद्धावस्था में कुछ बन नहीं पड़ेगा। इसलिये शास्त्र कहते हैं :—

'यावत स्वस्थमिदं देहं, यावत मृत्युश्च दूरतः।
तादात्म्य हितं कुर्यात्, प्राणान्ते किं करिष्यति ॥'

अर्थात्, जब तक तुम्हारा शरीर स्वस्थ है, और काल भी अभी दूर तक है तो अपने कल्याण का साधन कर लो। प्राणान्त हो गया तो फिर क्या करोगे ?

"कुछ सोचो दिल में ख्याल करो,
इस हस्ती की क्या हस्ती है।
समझे हो बुलन्दी आप जिसे,
यह पस्ती की क्या पस्ती है।
बस बसके उजड़ती है बस्ती,
कैसी अद्‌भुत यह बस्ती है।
दुनिया जिसे कहती बस्ती है,
दो रोज मुसाफिर खाना है।
जिन्दगी जिसे लोग समझते हैं,
वह मौत का एक बहाना है।
है सृष्टि की रफ्तार यही,
इक आता है इक जाता है।
जाने वाला आने के लिए,
आसन खाली कर जाता है॥"

श्रुति भगवती का कथन है—'उत्तिष्ठत, जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत्।' अर्थात् उठो, जागो, महापुरुषों की शरण में प्राप्त होकर ज्ञान को प्राप्त करो। तो यही समय है, चूको मत। प्रमाद को छोड़ो—

न दौलत साथ जायेगी ना शौकत साथ जायेगी।
न इज्जत साथ जायेगी ना रफ़अत साथ जायेगी।

'जो पूछे जायेंगे महशर में, वह अहमाल है तेरे।
अगर कुछ साथ जायेंगे, वह नेक अफ़आल हैं तेरे।।
मुनासिब है कि नेक अहमाल की तायत गुजारी कर।
पसंदीदा तरीके सीख, इज्ज़ो इनकसारी कर।।
भलाई कर बदी से बाज़ आ, परहेज़गारी कर।
जो तुझसे हो सके तो खलक की, खिदमत गुजारी कर।।
अगर नेकी करेगा तो, प्रभु उसका समर देगा।
तेरा दामन वही उम्मीद कि, फूलों से भर देगा।।'

"——" सन्त ने कहा कि मेरी एक चीज़ खो गई है। उसकी खोज में परेशान हूँ। पथिक ने कहा—'क्या खो गया है?' सन्त बोले—एक ही कम्बल था। वह स्नान करते समय मैंने नदी के किनारे पर रखा। 'जब गोता लगाया तो कोई लुटेरा उठाकर नगर की ओर भाग गया। तो पथिक ने कहा—फिर नगर में खोजना चाहिए, वह यहाँ थोड़े ही मिलेगा। साधु ने कहा—नगर का तो कोना कोना छान मारा, बहुत खोजा, परन्तु वह नहीं मिला तो विचार आया कि एक दिन यहाँ (मरघट में) तो अवश्य ही आयेगा। उससे कम्बल ले लूंगा। पथिक को चेतावनी हो गई कि अन्त का स्थान यही है। वैराग्य हो गया और मन को चोट लगी। महापुरुषों की शरण में जाकर अपने लक्ष्य का मार्ग पूछा। साधन पथ पर चल करके साधन की प्राप्ति कर ली। हंसते हंसते संसार यात्रा कर मोक्ष की प्राप्ति कर ली। मानव-जीवन का रहस्य यही है—

'वह चाल चल कि उमर खुशी से कटे तेरी।
वह काम कर कि लोग तुझे याद किया करें॥'

'——' इसलिए सब पाठक घरों में सपरिवार मिलक यह गीत बोला करें—

पंजाबी में है—

आवो गीत प्रभु दे गाइये,
कि माई भाई रल मिलके।
एह जीवन सफल बनाइये,
कि माई भाई रल मिलके।...
यह जीवन है अनमोला। है बड़ा पवित्र चोला॥
एह नूं विषयां दा दाग न लाइये,
कि माई भाई रल मिलके॥
विषयां तों मन नूं हटाके। सत्संग विच प्रेम बढ़ाके॥
प्रियतम नूं खूब रिझाइये,
कि माई भाई रल मिलके॥
एह दुनिया ओड़क फ़ानीं। इत्थे चंद दिन दी जिन्दगानी॥
दिल किसे दा नाहीं दुखाइये,
कि माई भाई रल मिलके॥
छड मज़हबी वैर ते कीने। कर साफ दुईं थीं सीने॥
बन हरमिलापी जाइये
कि माई भाई रल मिलके।
आओ गीत प्रभु दे गाइये
कि माई भाई रल मिलके॥
ओम् शम्

× × ×

अपने को पहिचानो

सर्व विदित है कि शक्ति और शक्तिमान के द्वारा निखिल ब्रह्माण्ड संचरण शील है। इसी को माया एवं मायावी, प्रकृति एवं पुरुष भी कहा जाता है। क्योंकि परमतत्व और जगत के आधार-आधेय-भाव का प्रतिपादन करती हुई तत्व-मीमांसा जब आचार पक्ष की विवेचना करती है और नीति-नियमों का संकलन करती है तब परम तत्व का नियन्तृत्व (पालक, संरक्षक) और जगत का नियाम्यत्व (प्रकरण, प्रचलन) प्रकाश में आता है। सरल शब्दों में भाव यह है कि जो जगत का आधार है, जगत का नियन्ता है, वही जगत का शेषी भी है। जगत परमतत्व का शेष भूत है, उसी प्रकार जिस प्रकार शरीरधारी, चेतन शरीर को अपना शेष भूत मानता है। उसकी प्रार्थना से प्रकाश मिलता है शान्ति मिलती है।

पाठक गण भी चाहते हैं कि जिस प्रकार से सत्संग से पूर्व कोई गीत तथा मध्य में कीर्त्तन कराते हैं या अन्त में कोई गीत या कीर्तन होता है, उसी प्रकार हर अंक में भी हो—सो प्रथम प्रार्थना के शब्द हैं :—

"मेरे दिल का मालिक तू ही हो, तूं ही हो।
तूं ही मेरी राहत तूं ही मेरी जिन्दगी हो॥
मेरा जिसम दुनियाँ में रहता कहीं हो।
यह फरहत में हो या बहाले-हिजी हो।

मगर तुझसे ही आंख मेरी लगी हो।
तेरे बिन न दिलदार मेरा कोई हो।
मेरे दिल का मालिक तूं ही हो, तूं ही हो॥

हो सरदी कि गरमी या बारिश झड़ी हो।
हो पर्वत, समुन्दर, या नाला, नदी हो।
हो बस्ती, या बन या महल झोपड़ी हो।
लगन एक तुझ से ही मेरी लगी हो।
मेरे दिल का मालिक तूं ही हो, तूं ही हो॥

मेरे पास दौलत हो या मुफलसी हो।
कोई बैर रखता हो या दोस्ती हो।
मिले उम्दा खाना या फाकाकशी हो।
मेरी रूह तुझ में ही रम रही हो।
मेरे दिल का मालिक तूं ही हो, तूं ही हो॥

हो इज्जत जहां में या बेइज्जती हो।
खुशी हो, मुसीबत हो जाँ कुन्दनी हो।
न तुझ से मेरी बेवफायी कभी हो।
वही हो प्रभु जिसमें तेरी खुशी हो।
मेरे दिल का मालिक तूं ही हो, तूं ही हो॥

प्रार्थना के माध्यम से जगत में आत्म-स्वरूप का ज्ञान ही परम लाभ है। श्री मद्भगवद्गीता का वचन है कि परमात्मा के सतत ध्यान और अनवरत (भाव-लगन से) चिन्तन से मानव का स्वभाव रुपान्तरित हो जाता है। विश्व के दूसरे धर्मों में भी ऐसा ही मत अभिव्यक्त है। भक्ति का

हृदय की भावनाओं, मानसिक संकल्प विकल्पों से सीधा एवं सत्य निकट सम्बन्ध है, क्योंकि आत्म-स्वरूप ज्ञान की भक्ति परम लक्ष्या है। आत्म-समर्पण द्वारा ही 'आत्म-ज्ञान' का अभास होने लगता है :—

"किसी को शाद कर देना, खुदा को शाद करना है।
किसी का दुःख मिटा देना, खुदा को याद करना है!!
किसी के काम आ जाना, खुदा का नाम लेना है।
गरीबों की मदद करना, खुदा को दान देना है!!"

फिर मनुज देह पाकर ऐसा नहीं किया तो भला फिर कबक रोगे ?

"दुर्लभो मानुषो देही देहीनां क्षणभंगुरः।
तत्रापि दुर्लभं मन्ये बैकुण्ठे प्रिय दर्शनम्!!"

यह मनुष्य शरीर दुर्लभ है, फिर यह क्षण-भंगुर है; परिवर्तन शील है, क्षण-प्रतिक्षण बदल रहा है। तो ऐसे शरीर को पाकर महान पुरुषों का सत्संग अति दुर्लभ है। महापुरुष पुकार पुकार कर कह रहे हैं—'ऐ जीव, मानव शरीर को पा कर अपने लक्ष्य को पहिचान। संसार के सब पदार्थ प्रभु ने मनुष्य के लिये बनाये हैं, पर मनुष्य को अपने लिये बनाया है; कारण-चौरासी लाख योनियों में केवल यह मानव शरीर ही है, जिसके द्वारा जीव, महापुरुष सतगुरु की चरण-शरण में जाकर उनसे सद्--उपदेश ग्रहण कर,उस पर मनन् करता हुआ, मोक्ष को प्राप्त कर सकता है। वास्तव में मनुष्य जन्म का यथार्थ तात्पर्य यही है, अन्यथा पछताना पड़ेगा।

'साथ नहीं हरिनाम लिया और,
गफ़लत में दिन रात चले ॥
काया भी बदनाम करी व्यर्थ-
अफसोस कि खाली हाथ चले ॥'

निष्कर्ष यह है कि शरीर-शरीरी-चेतन के लिये हैं, यह ज्ञान शरीर को नहीं है। शरीर जड़ है। शरीरी चेतन (भाव-आत्मा या जीवात्मा जड़ नहीं है) किन्तु उसे भी शरीर का पूरा ज्ञान नहीं है। शरीर का आधार और नियन्ता माने जाने पर भी वह पूर्णतया: स्वतंत्र नहीं है। वह शेषभूत है :—

"वदन्ति तत्तत्त्वविदस्तत्वं यज्ज्ञानमव्यम्।
ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते।।"

"—" आशय यह है कि जो तत्वदर्शियों के परमतत्व हैं, वे सच्चिदानन्द घन हैं। वे ही ब्रह्मवेताओं के परब्रह्म हैं, वे ही योगियों के परमात्मा हैं और वे ही भक्तों के भगवान हैं। महापुरुषों ने निरन्तर जो साधक बन कर अनुभव किये हैं, यह उन्हीं का आधार है।

"हर चश्म, हर बशर, हर फ़हम, हर मफ़हूम में।
नाज़िर, नाज़र, मंजर हूँ मैं, आलम हूँ मैं, मालूम मैं॥"
"ना है कुछ तमन्ना न कुछ जुस्तजु है।
कि बहदत में साकी न, न सागर, न वू है।"

यही प्रेरणा हमारी हिन्दु-संस्कृति का प्राण है। परहितका चिन्तन, पर दुःख में हिस्सेदारी लेना, दूसरे का वही रूप सम-झना जो वह खुद है। यह परम तत्व ज्ञान है। इसमें 'स्व' का

त्याग है, निःस्व का समावेश है। प्रमाद को त्याग द्वारा ही प्रकाश में लाया जा सकता है।

'बेखुदी छा जाय इतनी कि,
दिल से मिट जाये खुदी।
उससे मिलने का तरीका--
अपने खो जाने में है ॥'

यही समय है प्रमाद का त्याग करो। भजन अभ्यास करो। गुरुजनों की सेवा करो, नहीं तो बुढ़ापा आने पर कुछ नहीं बन सकेगा। फिर यह देही काल का ग्रास बन जावेगी। अन्त में सिर धुन कर पछताने के अलावा कुछ हाथ नहीं आवेगा। श्री गोस्वामी तुलसीदास कृत रामायण में भगवान राम का पावन संदेश, मानव समाज के प्रति कितना सुन्दर है :—

"नर तनु भव वारिधि कहं बेड़े :
सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरे ॥
करणधार सतगुरु दृढ़ नावा।
दुर्लभ साज सुलभ कर पावा ॥"

जो न तरहिं भव-सागर, नर-समाज अस पार।
सो कृत निंदक मंदमति, आत्महीन मति जार ॥"

एक और महापुरुष का कुछ इसी प्रकार का भाव है—

'हम मिट गये तो सूरते-हस्ती नजर पड़ी।
वीरां जब आप हो गये, बस्ती नजर पड़ी ॥'

इसके अनुसार ही गुरुवाणी में शब्द आता है। कबीर साहिब की वाणी है—

गुरु सेवा ते भक्ति कमायी ।
तब यह मानस देही पायी ॥
इस देही को सिमरहिं देव ।
सो देही भज हरि की सेव ॥
भजहूँ गोविन्द भूल मत जाहूँ ।
मानस जन्म का ऐही लाहूँ ॥
जब लग जरा, रोग नहीं आया ।
जब लग काल ग्रही नहिं काया ॥
जब लग विकल भई नहिं वाणी ।
भजि लेहि रे मन सारंग पाणीं ॥
अब न भजसि, भजसि कब भाई ।
आवे अन्त नहिं भजियाँ जाई ॥
जो कछु करहिं सोई अब सार ।
फिर पछुतातु न पावहुँ पार ॥
सो सेवक जिस लाया सेव ।
तिन हि पाये निरंजन देव ॥
गुरु मिले ताके खुले कपाट ।
बहुर न आवे जोनी बाट ॥
ऐहि तेरी अवसर तेरी बार ।
घट भीतर तूं देख-विचार ॥
कहत कबीर जीत के हार ।
बहु विधि कहि पुकार पुकार ॥

......श्री कबीर दास की चेतावनी है कि ऐ मनुष्य तेरे

लिये यही अवसर है। श्री सद्गुरु की चरण-शरण में जाकर भक्ति एवं आध्यात्मिक धन एकत्र करले और अपने घट के अन्दर देख कि तूं मनुष्य जन्म को जीत रहा है या हार रहा है। यह शरीर बार-बार मिलने का नहीं। शीघ्र अपने परलोक का सुधार करले।

"अजब हस्ती पे नाजान हो, ये हस्ती महज़ मस्ती है।
नहीं वाक़िफ कि हस्ती खुद तेरी हस्ती पे हँसती है।
जिन्हीं को ताज़े-जरी-तख्ते-ताऊसी, मुयस्सर थे-
उनकी कब्र पर रौनक तो क्या वहशत वरसती है।
दिलो जाँ बेचकर कुछ आखरत का जल्द सौदाकर-
यह चीज है बेबहा गर यूं भी हाथ आवे तो सस्ती है।
मुसाफिर खानाये दुनियां से अब सबको सफर आखिर-
कियामईं जा नहीं बसती, यह महमानों की बस्ती है॥"

भावः—यह शरीर प्रतिदिन काल के मुख में जा रहा है। इस महमानों की बस्ती का क्या ठिकाना है? क्यों ना हर-मिलापी बनकर सबको गले लगाया जाये? सब प्राणियों से प्रेम रखना ही सबसे बड़ी श्रद्धा है, भक्ति है। (चाहे वह सकाम भक्ति हो अथवा निष्काम भक्ति) मतलब सिर्फ खुदी का पर्दा मात्र उठाकर देखना है, हम कहाँ है? हमारा अपना आप क्या है? हमारा सही रुप क्या है? काल कितनी दूर रह गया है? बेखुदी का नशा अवश्य ही परमतत्व की ओर निर्देशित करेगा।

"खुदी का जब उठा पर्दा,अजब यह माजरा देख
कि वहाँ जिसको कहता था, उसी को बस खुदा देख
ज़माना मुझमें बसता है, बसा हूँ मैं जमाने में
दो आलम खत्म होते हैं, जरा आपा मिटाने में।

......इस पर एक दृष्टाँत दिया जा रहा है
कितना नज़दीक आ रहा है— पाठकगण ध्यान दें—

......एक कोई पार्थक था। वह मार्ग (भाव
भूलकर भयानक जंगल में जा निकला। वहाँ बन
चीते, हाथी, सर्पादि हिंसक जीव घूम रहे थे और
देखकर वह व्यक्ति भयभीत होकर, एक अन्धा कुवाँ
पड़ा था, उसमें एक बेल को पकड़ कर उल्टा लटक
जब वह नीचे कुवाँ में देखता है तो एक बड़ा भारी स
फाड़े बैठा है। जब वह ऊपर को देखता है तो एक मस्त
नज़र आया। उसके छः मुख थे और आधा शरीर काल
तथा आधा सफेद। जिस बेल को उसने अपने बचाव के
पकड़ रक्खा था, उसी को ही वह हाथी खा रहा था
चूहे, एक काला, एक सफेद उस बेल की जड़ को काट
थे। ऐसी अवस्था में वह भला किस प्रकार बच सकेगा

इसका भाव यह है कि यह जीव रूपी तो पार्थक
संसार रूपी बन है, काम क्रोधादि भयानक जीव हैं,
जीव को नष्ट करने के लिए फिर रहे हैं। माया
पिशाचिनी,भोग रूपी पाश हाथ में लिए फिरती है। घर
अन्धकूप है। आयु रूपी बेल है, इसके सहारे यह जीव ल

रहा है। कुंवें में काल रूपी सर्प है, वह डसने का अवसर देख रहा है। रात रूपी काला चूहा, दिन रूपी सफ़ेद चूहा, ये दोनों आयु रूपी बेल को काट रहे हैं। वर्ष रूपी हाथी के छः ऋतु रूपी छः मुख हैं। शुक्ल पक्ष और कृष्ण-पक्ष यह उसके दो सफेद-काले रंग हैं। ऐसी आपत्ति में पड़ा हुआ जीव अपने को सुखी मान रहा है। जिस प्रकार सर्प के मुख में पड़ा हुआ मेंढ़क, मच्छरों के खाने की इच्छा करता है, यही दशा इस जीव की है कि काल के मुख में पड़ा हुआ भी विषयों की इच्छा कर रहा है। लो विचार करें, इस क्षणभँगुर शरीर का कोई विश्वास नहीं, एक हिन्दी कवि ने कहा है:—

"क्षणभँगुर जीवन की कलिका,
कल प्रातः को जाने खिली न खिली।
मलया गिरि की शुचि शीतल-मंद-
सुगन्ध समीर मिली न मिली॥
कलि काल कुठार लिये फिरता
तनु कोमल चोट मिली न मिली।
भजले हरिनाम अरी रसना—
फिर अन्त समय को हिली न हिली॥"

भावः -यही समय है मानव जन्म के रहस्य को समझकर, भोगवाद को छोड़कर, आध्यात्मवाद की ओर आने का। प्रिय मार्ग को त्यागकर श्रेय मार्ग को अपनाकर मानवता के लक्ष्य को समझ मन में राग, द्वेष, ईर्ष्यादि को स्थान न दें। भोगवाद का मुख्य कारण है आज का मौजूदा असत्य (आडम्बरमय)

वातावरण, जो हमें चारों ओर से घेरे हुए है। लोग व
लिप्सा में लिप्त होकर कामिनी एवं कंचन के पँजे में पड़
राह भूलकर, बेतहाशा दौड़े जा रहे हैं। जैसे नक्कार खाने
तूती की आवाज, क्या माने रखती है; उसी प्रकार
अभी अपरोक्ष में पड़ा हुआ है। पर क्या, मानव के लिए
आचरण ठीक है? क्या वही हमारी बौद्धिक ज्ञान सँहिता है
क्या यही हमारे बौद्धिक होवे का वास्तविक पहलू है? य
जीवन गलत रास्ते पर वर्षा के गँदले पानी के तेज़ बहाव
की तरह वह रहा हो तो बहने देना हमारा कर्तव्य है? क
लोभ और लालच (स्वार्थ) जैसे अनित्य पदार्थ, सत्ता
पद की लोलुपता (प्रमाद) में फसंकर अपने आपको गुमर
कर लेना ठीक है? अपने आप से हमें इन्हीं सवाल
का जवाब मांगना है। हमें स्मरण रखना चाहिए—नि
पदार्थ के चिन्तन से, सांसारिक अनित्य पदार्थ (धनादि) स्व
दौड़े चले आयेगें—जैसे आटा पीसने की चक्की में पटा चढ़ाक
पहियों को घुमाया जाता है। भाव यह है कि एक पटे क
शक्ति से कई पहिये अपने आप घूमने लगते हैं। इसलिये अप
आपको प्रमादवश गिराना उचित नहीं है, कोई नैतिक
आचरण नहीं है। उपनिषद प्रमाण देता हैः—

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यास्यापिहितं मुखम् ।
तत्त्वं पूषन्नपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ।।

आशय यही है कि सत्य का मुख ढका है, सोने के ढक्कन
। यदि सत्य अनुभवगम्य (साक्षात्कार) करना है तो इस
वर्ण ढक्कन को आन्तरिक ज्ञान पुंज द्वारा हटाना ही होगा ।
ो क्यों न आत्मचिंतन कर, परमार्थ का धन एकत्र करले
ाथ ही हर में हरि को पहिचान कर सबसे प्रेम करें । यही
यथार्थ रूप में मानवता है ।

'मानवता भी है यही, सब ग्रन्थन को लेख ।
यही सार वेदान्त का, हर में हरि को देख ।'

इस पर एक छोटी सी कथा है—

एक महापुरुष पूर्ण सन्त जो हर में हरि को देखते थे, कहीं जा रहे थे । किसी दुष्ट ने (भाव बदमाश, बद मिज़ाज) उनके सर पर लाठी मारकर घायल कर दिया । स्वयं भाग गया । लोगों ने उन्हें बेहोश देखकर दवा खाने पहुंचाया । वहां मरहम-पट्टी की गई । कुछ देर बाद उनको होश आ गया । उसके बाद एक दवाखाने का कर्मचारी दूध लेकर आया और उनसे बोला—महाराज यह दूध पी ली जिए । सन्त उसकी बात सुनकर हंसे और बोले—वाह जी वाह, भाई तुम बड़े विचित्र हो । पहिले तो लाठी मारकर घायल कर दिया और अब बिछौने पर सुला कर दूध पिलाने आ गए !

बेचारा कर्मचारी सन्त जी की बात को समझ न सका और उसने कहा—महाराज, मैंने लाठी नहीं मारी थी । वह

कोई दूसरा दुष्ट व्यक्ति था, मैं तो दवा खाने का सेवक हूं
सन्त ने कहा—मैं अच्छी प्रकार तुम्हें जानता हूं, तुम बहुरूपि
हो। कभी डाकू बदमाश बनकर लाठी मारते हो, तो कभ
सेवक बनकर दूध पिलाते हो। जो तुम्हें न पहिचानता हो
उसके सामने फरेब करो। मैं तुम्हारी सब माया जानता हूं
मुझसे नहीं छिपा सकते।

तो-तब उस कर्मचारी की समझ में आयी यह बात कि
यह तो सबमें ही प्रभु को देख रहे हैं। ऐसे महान पुरुष क
मिलना तो बहुत दुर्लभ होता है। भगवान कृष्ण स्वयं गीत
में अर्जुन के प्रति कहते हैं—

"बहूनां जन्मनामन्ने ज्ञानवान्यां प्रपद्यते।
वासुदेव: सर्वागीति स महात्मा सुदुर्लभ:।"

(गीता ७।१९)

सब में वासुदेव: देखने वाले महान पुरुष ही पूर्ण ज्ञानी
है।

प्रियतम बसदा तेरे कोल।
तूं क्यों फिरनायें डांवाडोल।
अपने मन दी घुण्डी खोल। प्रियतम……!!
भैंड़े मन नूं तूं समझा।
विषयां विच न उमर गवा।
मानुष जन्म दी आस तूं पा।
ऐंवे हीरा जन्म न रोल। प्रियतम……!!

दम दम दे विच अलख जगा।
बाहर ढूंढने किते ना जा।
अपने अन्दर झाती पा।
दसवें द्वार दा फाटक खोल। प्रियतम···!!

दुनियां एह है वांग सरा।
इत्थे बैठ न डेरे ला।
वांग मुसाफिर समय लघां।
सिर ते बजदा मारू-ढोल। प्रियतम···!!

हर हर विच रिहा ओह समा।
उसदे मिलन दी एह है राह।
दिल न किसे दा मूल दुखा।
अपने दिल नूं तूं टटोल।
प्रियतम वसदा तेरे कोल।
तूं क्यों फिरना एं डांवाडोल प्रियतम······।

अब उपसंहार करते हैं। मानव जीवन का परम लक्ष्य यही है—

जीना ऐसा जीना होवे, जी न कोई कल्पाये तूं।
मरना ऐसा मरना होवे, मरकर फिर न आये तूं।

ओम् शम्

सदाचार : प्रमाद का त्याग

जीव जब तक मानव जीवन के रहस्य को समझेगा नहीं, तो करेगा क्या ? जिस पथिक (भाव-राही) को अपनी मंजिल का पता ही नहीं, वह पहुँचेगा कैसे ? इसलिए जीवन के लक्ष्य को समझना ही चाहिए । नहीं तो यह पावन अवसर हाथ में आया हुआ व्यर्थ चला जायेगा । मानव जीवन का रहस्य ही उसका लक्ष्य है, जो अपरोक्ष छिपा हुआ है । लक्ष्य कर्म के अनुसार निर्धारित होता है । उदाहरण के रूप में—सकाम कर्म जैसे सकाम लक्ष्य ; जैसे शरीर को ढकने के लिए कपड़ा, भूख एवं शक्ति हेतु भोजन, रहने के लिए मकान, (धनो-पार्जन एवं पालन पोषण निमित्त किया हुआ कर्म) । और निष्काम कर्म से निष्काम लक्ष्य, यही लक्ष्य वह मंजिल है, जहाँ 'तू कौन है' का दर्पण लगा हुआ है और वहाँ पहुँचकर इसी दर्पण में अपना मुख देखकर अपने प्रतिबिम्ब (भाव परछांई) को उत्तर देना है—'तू कहाँ से आया है' और "किस वास्ते आया है?" क्योंकि यह लक्ष्य जीवन की सही दिशा का ज्ञान कराता है। मिसाल के लिए 'जन्म क्यों लिया है ? मृत्यु क्यों होती है? हमारा क्या ध्येय (स्वधर्म) है? जीवात्मा और पर-मात्मा क्या है?' आदि की खोज, मनन, एवं चिन्तन ही निष्काम लक्ष्य है—भाव यह है कि पूर्ण 'आत्म समर्पण' ही लक्ष्य है । यद्यपि हर निष्काम कर्म में सकाम-भाव का कुछेक अंश पाया जाता है, किन्तु अपने सम्बल (will power) द्वारा स्थिति-

प्राज्ञ' (Disolve) होना निष्काम लक्ष्य है। यही मंजिल का रास्ता है, परा अनन्यता है। इसलिए कहा है कि जीवन के अनमोल लक्ष्य को, साधना किये बगैर मत जाने दें।

'जिन्दगी इक तीर है, जाने न पाये रायगाँ।
देखलो पहिले निशाना, वाद में खींचो कमाँ॥"

—यदि मनुष्य के पास ८-१० तीर हों, और दो चार निशाने चूक भी जायें तो कोई बात नहीं; परन्तु यदि एक ही तीर हो और वह भी निशाने से चूक गया तो क्या बनेगा? तो निर्णय यही हुआ कि मानव-जन्म एक तीर है। अपना कोई लक्ष्य बनालो। इस पथ पर चलकर अपनी मंजिल पर पहुँच जावोगे। नहीं तो सिर धुन-धुन कर पछताना होगा। फिर बनेगा कुछ नहीं—

"साथ नहीं हरिनाम लिया,
और गफ़लत में दिन रात चले।
काया भी बदनाम करी—
अफसोस कि खाली हाथ चले।"

दीवान वली राय साहब ने इस विषय में अनुभव के शब्द लिखे हैं:—

"वतन अपने को जाने को उदास दिल हमारा है।
रहें परदेश में कब लग, कि आखिर घर हमारा है॥
वहाँ भी खुवेश सारे हैं, जो आगे जा उतारे हैं।
हम भी चलन हारे हैं, मजज़ ने आ पुकारा है॥

यही अफसोस है मुझको, न खर्ची है न पानी है।
निभेगी किस तरह मंजिल, कि सर पर बोझ भारा है॥
अगर कुछ ले न
हमको कौन जाने
वली कुछ ले भी
उठी कर मिलेंगे मुझ

'—इसलिए श्रेय पथ पर चलकर अपने परलोक
साधन अभी से बनाना आरम्भ करदो।'

संसार में कुछ मनुष्य ऐसे हैं, जो बहुधा यह कहा कर
हैं कि संसार में जितने अच्छे-अच्छे पदार्थ हैं, वह सब हमा
ही लिए प्रभु ने बनाये हैं, यदि हम उनको न भोगें तो वह
ही किसलिये ? जिन लोगों की यह आवाज है, यदि उन
पूछा जाये कि भाई मान लिया संसार के सब पदार्थ तुम्हा
प्रभु ने बनाये हैं, परन्तु तुम किसलिए बने हो ? इसका उत्त
उनके पास कुछ नहीं है।

भाव यह है कि उनकी प्रवृतियाँ भोगवादी हो गयी हैं
और अभी तक लकीर की फकीर बनी चली आ रही हैं
किन्तु भौतिकवाद (भोगवाद) स्वयं अपने में धर्म नहीं
और विचार करने पर अनुभव होता है कि जो स्वधर्म नहीं
अपितु गौण है, वह लक्ष्य कैसे हो सकता है ? वह मुख्य विष
क्या हो सकता है ? इसी प्रमाण का दूसरा महत्वपूर्ण पक्ष य
है कि विज्ञान (भावः विस्तृत ज्ञान) भौतिकवाद नहीं। आगा
अवश्य है किन्तु अन्जाम नहीं। विज्ञान एवं धर्म दोनों

घोषित लक्ष्य मानव जीवन का समष्टिकरण है किन्तु ध्रुवीकरण (**Polarisation**) नहीं। विज्ञान या वेद एक भाष्य वस्तु स्थिति है। विज्ञान (वेद), बिना धर्म के असहाय है तो धर्म, बिना वेद के अप्रकाशवान है। अतः दोनों ही परस्पर पूरक है, किन्तु ध्रुवीकरण स्वधर्म (लक्ष्य) सदाचार के नियमों के अनुसार किया जा सकता है। धर्म जब मानव-जीवन की मंजिल का निशान बनता है तो मानवता, मानवीय कर्म एवं लक्षय-भेद भाव पैदा होता है। यह भाव हमारा आध्यात्म है, नित्य है। अतः निर्णय हुआ कि विकार रहित, आसक्ति हीन होकर ही परम लक्ष्य की दिशा निर्धारित की जा सकती है। स्वामी विवेकानन्द के शब्दों में—"सही लक्षय है उस अन्दर के ईश्वर (सत्य) को वाह्य एवं अंत प्रकृति (**Inspiration**) द्वारा प्रकाश में लाकर उसका पाठन, अध्ययन, लेखन एवं चिन्तन करना।"

यह तो सत्य है कि संसार के समस्त पदार्थ जो दृष्टि में आते हैं, वह प्रभु ने मनुष्य के लिए बनाये हैं। जैसे गंगा, यमुना आदि पावन नदियाँ सब मनुष्यों के लिए ही हैं, चाहे उसका जल, पशु भी पीते हैं। पशु भी तो—हाथी, घोड़े सभी मनुष्य के ही काम आते हैं, और नदियों से खेतों को जल मिलता है, तो वह भी गेहूँ, मक्का, ज्वार, बाजरा, ईख [गन्ना] सब मनुष्य के ही काम आते हैं। गाय, भैस, बकरी आदि चलती फिरती दूध की मशीनें हैं। वाटिका के सुन्दर, सुगन्ध आदि पुष्पों की सुगन्ध का अनुभव भी मनुष्य ही करता है। जना-जना सब मनुष्य सुख

के लिए हैं। सुन्दर दिव्य अमृत फल आम, अनार, अंगूर, सेब, नाशपाती, बादाम, पिस्ता, खाजा, अखरोट इत्यादि तथा माल्टा, संतरा, चीकू, केला, सरदा, खरबूजा, तरबूज, सीताफल आदि आदि सब मनुष्यों के लिए प्रभु ने बनाये हैं। जितनी मिठाइयों की दुकानें बाजार में सजी हैं या कपड़े की बड़ी-बड़ी मारकीटें [मात्र जितने भी खाने खाने-पीने के पदार्थ और कपड़े वस्त्र हैं] मनुष्य के लिए ही प्रभु ने बनायी हैं जहाँ तक आपकी दृष्टि जाती है सब पदार्थ प्रभु ने मनुष्य के लिये बनाये हैं।

तो यह प्रश्न भी स्वतः ही उठता है कि मनुष्य को किस लिये बनाया है। जब सब मनुष्य की सेवा में खड़े हैं। यहाँ तक कि सूर्य, चन्द्रमा, वायु, अग्नि, जल आदि सब देवता भी तेरी सेवा में अपना धर्म निभा रहे हैं तो क्या मनुष्य ने भी कभी अपने धर्म के ऊपर दृष्टि डाली है कि मुझे प्रभु ने किस लिए बनाया है ? मेरा क्या कर्तव्य है ?

निर्णय यह होता है कि संसार के समस्त पदार्थ प्रभु ने मनुष्य के लिए बनाये हैं और मनुष्य को प्रभु ने अपने लिये बनाया है तो मानव को अपने कर्तव्य पर दृष्टि डालनी चाहिए। मनुष्य केवल खाने-पीने की खातिर संसार में नहीं आया है। अपने उद्देश्य को समझना मानव-समाज का परम-कर्तव्य है। एक शेर है —

"खुरदन बराए ज़ीस्तन न ज़िक्र करदन अस्त ।
तू मोतद् किद कि ज़ीस्तन अज़ बहरे खुरदन अस्त ।"

भावार्थ:—खाना पीना जीवन के लिये है, जीवन खाने पीने के लिए नहीं है। जीवन तो प्रभु की याद के लिये है।

परन्तु मनुष्य भूल कर यही समझ रहा है कि मेरी जिन्दगी ही खाने-पीने और मौज उड़ाने के लिए है। यह बड़ी भूल है। खाना-जीने के लिए है, जीना खाने-पीने के लिए नहीं है।

यह ध्यान रहे कि यह शरीर तो इस जीव का नौकर है, और जीवात्मा इसका मालिक है। यह तो सेवा के लिए मिला है। परन्तु यह जीव उल्टा गलती से (प्रमादवश) इसकी सेवा में लग गया है। कारण—जो भी प्रातः से लेकर रात्रि तक कार्य आप करते हैं, शरीर के पालन पोषण के निमित्त होते हैं, आत्मोत्थान के लिए नहीं होते हैं।

यदि विचार करके देखा जाय तो उस आत्मा के ऊपर शरीर ने ऐसा पर्दा डाल दिया है कि आत्मा उसमें ढक गई है। घर का मालिक गुम हो गया है। जैसे स्वामी 'राम' कहते हैं-

"आंचे मा करदेम बरखुद हेच नावीना न कर्द।
दरमियाने खाना गुम करदेम साहिब खाना रा॥"

भाव--किसी अन्धे ने भी अपने साथ नहीं किया, जो मैंने किया है। घर के अन्दर घर का मालिक गुम कर बैठा॥

तो आप समझ गये होगें कि शरीर घर है, आत्मा मालिक है, परन्तु प्रमाद इतना हो गया है कि अपने आप की सुधि

नहीं रही। कबीर साहब कहते हैं-

"मोहे ऐसी सूझि परी रे।
नदियां नाव में डूबी जाये।"

भावार्थ-आत्मा नदी है, शरीर नाव है। कबीर साहब कहते हैं मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि नाव में नदी डूब रही है। भाव-शरीर में आत्मा गुम हो गया है। महापुरुषों का कथन है--तूं जो अपने आप को शरीर समझ रहा है, सो तू शरीर नही है। यह शरीर तेरा नौकर है, तूं इसका मालिक है। तुझे अपने स्वरूप का ज्ञान होना चाहिए। नौकर की तनख्वाह में रोटी, कपड़ा है। वह इसे देना जरूरी है। इसकी सम्भाल रखनी भी जरूरी है, परन्तु इससे अधिक इसे कुछ दिया गया तो यह बिगड़ जायेगा। तेरा आत्मिक हनन करेगा। यह निस्संदेह बात है-जो मालिक नौकर को खाने पीने के लिए खुला खर्चा देता है, और उससे काम लेने के ढंग नही जानता, वह सदा हानि उठाता है। और फिर जिस घर में सब अधिकार ही नौकर के हों, तो मालिक के घर का क्या होगा? थोड़े दिनों के अन्दर ही वह घर को उजाड़ देगा!

तो शरीर को रोटी कपड़ा दिया जावे, साथ ही इससे काम भी लिया जावे—परमेश्वर की प्राप्ति का। कारण-इस मनुष्य शरीर द्वारा ही भगवद् प्राप्ति हो सकती है। यह साधन है, भगवान साध्य हैं। यह भी निश्चित है कि बिना साधन के साध्य की प्राप्ति नहीं होती है।

तो इसलिये अभी से ही सावधानी से काम लें। इस दुर्लभ मनुष्य शरीर को पाकर विषयों में नष्ट-भ्रष्ट नहीं करें। रामायण में भी गोस्वामी जी ने कितनी सुन्दर चौपायी इस विषय पर लिखी है। भगवान राम जी का सन्देश है:-

"यह तन कर फल विषय न भाई।
स्वर्गहूँ स्वल्प अन्त दुख दाई॥
नर तन पाहि विषय मन देही।
पलटि सुधा ते सठ विष लेही॥
ताहि कबहुँ भल कहे न कोई।
गुंजा गहै परस मणि होई॥"

भगवान कहते हैं कि मनुष्य शरीर का फल विषय विकार नहीं अर्थात यह शरीर विषयों विकारों के लिए नहीं मिला। यदि इस शरीर को पाकर जीव ने स्वर्ग की प्राप्ति भी करली, तो भी इससे कुछ नहीं किया। क्योंकि इस शरीर का फल स्वर्ग भी नहीं। स्वर्ग में भी इन्द्रियों के सुख भोग हैं, जिसका परिणाम अन्त में दुख भोग होता है। इसलिए इस शरीर को पाकर जिसने विषयों में मन को लगाया है, वह मूर्ख, अमृत के बदले विष को खरीद रहा है। भला, जो मनुष्य हाथ से पारस मणि देकर कांच खरीदे उसे भी कोई बुद्धिमान कहेगा? उसे तो सब मूर्ख ही कहेंगे।

इसी प्रकार जो पुरुष विषयों में सदा मस्त रहता है और अपने परलोक की ओर ध्यान नहीं देता, उसकी भी यही अवस्था है। इसलिए हे मनुष्य, तेरे जीवन का उद्देश्य यह नहीं

है। तू जाग, मानव जाग। आपने स्वरूप को पहिचान। य
समय है, नहीं तो पछताना पड़ेगा। महापुरुष आपको चे
वनी दे रहे हैं:-

"मानुष जन्म दुर्लभ है, होत न बारम्बार।
ज्यों बन-फल पाका भुईं गिरे, बहुरि ना लागै डार॥"

एक पंजाबी का शब्द भी इसी की पुष्टि करता है:—

"फेर न मिलसी जन्म मनुष्य दा।
एह वेला है रब दे पावणे दा।
टूटा फल न डाली दे नाल लगे-
भन्ना मोती न फेर घढ़ावणे दा।
टूटा शीश न कारीगर फेर जोड़े।
फिट्टा दुध न फेर जमावणे दा॥
सब सन्त पुकारदें साईं लोका-
एह वेला है प्रभु दे पावणे दा॥"

जिस समय की खोज में तू था वह तुम्हें अब प्राप्त है। इसको गफ़लत (भाव-प्रमाद) में न गंवा। अज्ञान की निद्रा को त्याग। विवेक रूपी सूर्य के प्रकाश से काम ले।

"जागना है तो जागले, अफलाक के साया तले।
हशर तक सोया रहेगा, खाक के साया तले॥
नींद निशानी मौत की, उठ कबीरा जाग।
और रसायन छाँडि के, नाम रसायन लाग॥"

प्यारे जिस जगत को तूने विश्राम-गृह समझ रखा है वह विश्राम-गृह नहीं, यह तो कर्म भूमि है। कर्मभूमि में सभी

पदार्थ मौजूद हैं, किन्तु पुरुषार्थहीन प्रमाद में फँसे समय को बर्बाद कर रहे हैं। रामायण साक्षी है-

'सकल पदारथ है जग माही।
कर्महीन नर पावत नाहीं॥'

जिस प्रकार समर भूमि से (भाव-युद्धक्षेत्र) से डरकर भागे हुए सिपाही की कोई कदर नहीं होती है, क्योंकि यह उसकी बन्धनमय (मोह के वशीभूत) पराजय है। वैसे ही कर्महीन (पुरुषार्थ रहित) मानव की कोई विशेषता नहीं है। कबीर द्वारा सारमय तत्व—"और रसायन छाँडि कर, नाम रसायन लाग," के अनुसार अपना लक्ष्य हृदय में निश्चित कर लेना चाहिए। परमार्थ-विमुख इन्द्रियों (कर्म एवं ज्ञानेन्द्रियों) के बारे में, उनकी अकर्मण्यता पर क्या कहती है रामायण ? सुनो, हे अमृत पुत्रो !!

'जिन हरि कथा सुनी नहिं काना।
श्रवण रन्ध्र अहि भवन समाना॥
नयनहिं सन्त दरस नहिं देखा।
लोचन मोर पँख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुँबरि सम तूला।
जेन नमत हरि गुरुपद मूला॥
जिन्ह हरि भगति हिय नहिं आनी :
जीवत शव समान ते प्राणी॥
जे नहिं करहिं राम गुन गाना।
जीह सो दादुर जीह समाना॥

कुलिस, कठोर, निठुर, सोई छाती।
सुनि हरि चरित न जो हरषाती।'

अतः भाव समझ कर अपने आप को सम्भाल प्रा
तू अभी सत्पथ से भटक रहा है। तू उस गीदड़ को
भूला हुआ है जो रात को सर्दी से डर कर शहर में भड़
के भाड़ का घर समझ बैठा था और अन्त में भड़भूँजे
डण्डे खाने पर, वहां से भागा और कुत्तों का शिकार
गया। इसकी कहानी इस प्रकार है।

कहते हैं कि एक गीदड़ किसी जंगल से मारा मारा
में आ निकला। रात का समय था। सर्दी सख्त पड़ रही
लोग सो रहे थे। बेचारा फिरता फिरता एक भड़भूँजे
दुकान में घुस गया और सर्दी से बचने का कोई स्थान खो
लगा। हाथ पाँव मारते मारते अचानक भाड़ में गिर प
भाड़ की राख गर्म थी। वहां पर गिरते ही अति प्रसन्न
कि रात तो आनन्द से कटेगी, दिन चढ़ेगा तो देखा जाये
प्रातः चार बजे भड़भूँजा उठा और भाड़ को ग
करने के लिए अग्नि जलाने लगा तो क्या देखता है कि
में गीदड़ सोया पड़ा है। उसने चुपके से डण्डा उठाया
एकदम उसने दो-तीन लगाये। बेचारा चीखता चिल्ला
दुम दबा कर भाग निकला। रोशनी हो चुकी थी, भागते
को कुत्तों ने देख लिया और थोड़ी ही दूर जाकर उसके
हर लिये।

जो लोग यह कहा करते हैं कि यार अब तो आराम

गुज़रती है, परलोक की ईश्वर जाने मरकर कौन वापिस आया है और किसने वहाँ का हाल दिया है ? नरक-स्वर्ग किसने देखा है? मोक्ष क्या वस्तु है ? सब ढकोसले हैं आदि कहकर अपना मन परचा लेते हैं, उनको मिसाल इस गीदड़ जैसी समझनी चाहिए। अन्ततोगत्वा उनको पछताना पड़ेगा। जो कहकर मन परचा लेते हैं कि युवावस्था में तो विषय-भोगों का आनंद ले लो, वृद्धावस्था में प्रभु-भजन हो जायेगा। भगवत्प्राप्ति के लिए, अपने उत्थान के लिए, आध्यात्मिक ज्ञान के लिए आयु का कोई नियम नही है, न ही कोई बन्धन है, एवं कोई निर्धारण नही है। बाल्यावस्था, तरुणावस्था युवावस्था, प्रौढ़ावस्था, एवं वृद्धावस्था आदि तो आयु अनुमान के लिये निर्धारित की गयी हैं। अगर बाल्यावस्था या युवावस्था में यह सद्‌कर्म न हो सकता तो भगत प्रहलाद एव ध्रुव के के नाम अभी तक अमर क्यों रहते ? ऐसा सोचना कोरा अन्ध-विश्वास, आलस्य, कर्महीनता एवं प्रमाद है। जानते हुए भी अपने आपको बंधनों में बाँधना है, स्वयं को अन्धेरे में रखना है। कारण स्पष्ट है—युवावस्था में ही सब कुछ हो सकता है—

"दर जवानी तोबा करदन शेवाय पैगम्बरी हत।
वक्ते पीरी गुर्ग ज़ालिम में शव्द परहेज़गार।।"

भाव—जवानी में जो अपने मन को बचाये तो उसका बड़ा ऊँचा दर्जा है। बुढ़ापे में तो ज़ालिम भेड़िया भी परहेज़-गार हो जाता है क्योंकि किसी जानवर पर हमला नहीं कर सकता है।

"धातुं शुक्ष्माणेषु शान्तिकस्य न जायते

नवै वैश्यसि यः शान्तः सः शान्तीति कथ्यते ॥"

अर्थात जब धातु बल-क्षीण हो जाता है तो कौन शान्ति वान [भाव-भलामानस] नहीं हो जाता ? युवावस्था (भा नौजवानी) में जो बुरे कर्मों से बचे, मनमें विकार न हो वही शान्त पुरुष है । किसी ने कहा है

"ज्ञान मार्ग अतिरिक्त ज्ञान के,और किसी से प्रीति न जोड़।
जबकि भला तेरा साथी है, तो फिर साथ बुरों का छोड़ ॥
यदि तेरी इच्छा है यह जग, तुझको करे हार्दिक-प्रेम।
प्रसन्नता के साथ रहा कर, अहंभाव से नाता तोड़ ॥"

तो मानव जीवन के रहस्य को जानो । पुरुष से पुरुषोत्तम, नर से नारायण, जीव से जगदीश बनने का प्रयत्न करो।

"तूं कैद नहीं आज़ाद है, आज़ादी को जान ।
तूं शाद है नाशाद नहीं, अपने को पहचान ॥"

पाठकों के समक्ष अन्त में 'जीव और ब्रह्म' में क्या तादात्म्य है, समभाव है, बड़ी सरल भाषा में देते हैं । जैसे जैसे प्रभु प्रेरणा देगें ; क्रमशः लिखते रहेंगें ।

"गोपाल हो तुम, मैं बाल सखा, तुम और नहीं मैं और नहीं।
मैं बालक हूँ, तुम मात पिता, तुम और नहीं मैं और नहीं ॥
तुम दीपक, मैं उजाला हूँ, तुम और नहीं, मैं और नहीं।
तुम गायत्री, मैं मालाहूँ, तुम और नहीं, मैं और नहीं ॥
तुम कर्म, मैं कर्म आचारी हूँ, तुम हित हो मैं हितकारी हूँ ।
तुम ठाकुर हो, मैं पुजारी हूँ, तुम और नहीं, मैं और नहीं ॥
तुम चँद मैं एक चकोरा हूँ, तुम कमल मैं रस का भौरा हूँ ।

तुम मोरे हो, में तोरा हूँ, तुम और नहीं, मैं और नहीं ॥
तुम सूर्य हो, मैं उजियारा हूँ, तुम चाँद, मैं एक सितारा हूँ।
तुम सागर हो, मैं धारा हूँ, तुम और नहीं मैं और नहीं ॥
तुम दिल में हो मैं जाहिर हूँ, तुम भीतर हो मैं बाहर हूँ।
तुम नारायण हो, मैं नर हूँ, तुम और नहीं, मैं और नहीं ॥
द्वैत का भेद मिटा प्यारे, अब देर है क्या आजा प्यारे।
इस दास की आस पुजा प्यारे, तुम और नहीं, मैं और नहीं।
गोपाल हो तुम, मैं बाल सखा, तुम और नहीं, मैं और नहीं ॥

ओम् शम्

× × ×

परम लक्ष्य : महा वाक्य : सोऽहम्

एक दीवाने की प्रभु चरणों में अरदास—
'मेरी आस यही, अरदास यही,
तुझे अपनी कहानी सुनाया करूँ।
मेरी इसमें खुशी तू रूठा करे—
मैं अकेले में तुझको मनाया करूँ !!
कोई वहशी कहे या दीवाना कहे,
चाहे पागल ये सारा जमाना कहे,
मेरे रोने पे आये जो तुमको हँसी,
तो मैं रो रो के तुमको हँसाया करूँ !!
प्रभु कैसे भुलादूँ तेरी चाह को,
नित्य पलकों से झारूँ तेरी राह को,
तेरी चरणों की धूलि को चंदन समझ,
क्यों न माथे से उसको लगाया करूँ !!
मेरी आस यही, अरदास यही,
तुझे अपनी कहानी सुनाया करूँ !!"

"———" मानव अपने लक्ष्य को समझेगा नहीं तो
गा ही क्या ? यह पावन चोला जो मिला है, यदि विषय-
ारों में व्यर्थ चला गया तो सिर धुन धुन कर पछताना
गा। एक एक श्वास तेरा बहुमूल्य लाल है। तुझे ज्ञान
हीं; तेरे जीवन का आधार यही श्वास ही तो

। आयु भी सब की इसी पर निर्भर है । शास्त्रों की खोज है—कबूतर के एक मिनट में ३६ श्वास चलते हैं, और बन्दर के ३२ श्वाँस एक मिनट में चलते हैं । इसी प्रकार से श्वान के २६, बकरा के २४, घोड़ा के १६, मनुष्य के १२, हाथी के १२, सर्प के ८, कछुआ के ५ श्वाँस, यह प्राचीन ऋषियों ने गिनती लिखी है, उनका अनुभव है । सबसे अल्पायु कबूतर की है और सबसे अधिक कछुआ की मानी जाती है । मनुष्य और हाथी की आयु बराबर बनती है । मनुष्य यदि यम, नियम का पालन कर सत्व प्रधान होगा (भाव-शान्त तथा समाहित चित्त होगा) तो एक मिनट में १२ श्वाँस चलेंगे । वैसे किसी महापुरुष का अनुभव है कि बैठत बारह, चलत अठारह, सोवत चौबीस, भोगत चौंसठ । (भाव-सात्विक वृत्ति से बैठा हो तो एक मिनट में १२ श्वाँस चलेंगे, चलते फिरते १८ और निद्रा (भाव-सोने) में २४, तथा मैथुन करते समय ६४ । तो योगी लोग प्राचीन काल में यम, नियम, प्राणायामादि साधन से अपनी आयु बढ़ा लेते थे । सतयुग, त्रेता, द्वापर में वेद-शास्त्र की गणना के अनुसार एंवं प्रमाण स्वरूप मानव के श्वासों की गिनती आठ पहर में २१,६०० बतायी है । कलियुग में अधिक लोग विषयी (भाव-विषयात्मक) हैं । श्री गुरुनानक देव जी महराज ने २४,००० की गिनती रक्खी है । यदि २१,६०० हो तो एक मिनट में १५ बनते हैं, तो योगीराज १२ की गिनती से ३ श्वास मिनट में बढ़ा लेते हैं । इसी आधार से आयु बढ़ जाती है । (भाव-श्वासों की राशि बढ़ जाती है ।)

महापुरुष एक श्वास को भी व्यर्थ नहीं गँवाते हैं।

"ऊठत, बैठत, सोवत नाम।
कह नानक जनके सद्काम॥"

कबीर साहब का कहना है—

"कहिता हूँ कह जात हूँ, कहा बजाऊँ ढोल।
स्वासा वृथा जात है, तीन लोक का मोल!!"

श्री कबीर दास जी ने एक श्वांस की त्रिलोकी व
डाली पर हम लोग उसको व्यर्थ गँवा रहे हैं। प्रमाण य
कि पृथ्वी के चारों ओर भी वायुमण्डल बराबर दबाव
हुए है, चाहे जल का दबाव किसी स्थान पर है अथव
किन्तु वायु का दबाव सब जगह है। विद्वानों ने मानव-श
की श्वास-प्रणाली के आधार पर गुप्त रोगों, अल्पायु चि
होने के प्रमाण भी जनता के समक्ष रक्खे हैं।

दृष्टाँत में—"एक जाट था। उसकी थोड़ी सी ज़
नदी किनारे थी। उसने भूमि में बाजरे का बीज बोया।
बाजरा पकने पर आया तो जाट ने खेत की रक्षा के
मचान बनाया। फिर मिट्टी के गुलेल बनाने का विचार ि
कि पछी उड़ाने पड़ेंगे। तो ऐसा विचार कर (किसी काँत्रे
रखी) मिट्टी की खोज करने लगा। नदी किनारे पर प्र
रेता अधिक होता है। तो दूर से जहाँ मिट्टी का निशान न
आया, कसी से मिट्टी खोदने लगा। खोदते खोदते नीचे
एक मटकी निकली उसमें लाल थे। वह जाट भला ल
को क्या जाने? देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ और कहने ल

ाभु की अपार कृपा से बने बनाये गुलेल मिल गये । रंगदार ुन्दर बने हुए । अब मैं इनसे पक्षियों को उड़ाऊँगा । सो वह ऊपर बैठकर लालों को गुलेल समझकर चिड़ियों को उड़ाने लगा । लालों ने देखा कि मूर्ख जाट को हमारा ज्ञान नहीं, हमें गुलेल समझ पक्षियों के पीछे उड़ा रहा है । यदि किसी जौहरी के हाथ आते तो हमारा आदर-मान होता । इतने में उसकी गृहणी भोजन लेकर आयी तो साथ छोटा सा बालक था । ज्यों ही उसकी दृष्टि मटकी के भीतर गई तो खिलौना समझकर रोने लगा । "शिशु बाल रोवत रूठ", माता ने कहा, 'बेटा क्या चाहिए ?' बच्चे ने कहा—मटकी वाला खिलौना । उसने अपने पतिदेव जाट से कहा, "जो मटकी में एक खिलौना पड़ा है, बालक माँगता है । यदि आप की आज्ञा हो तो बालक को मैं दे दूँ ।" जाट ने कहा, "शीघ्र दे दो । यदि मुझे ज्ञात होता कि बालक इससे प्रसन्न होता है तो मैं दो चार रख लेता, मेरे पास सैंकड़ो थे । चलो एक रह गया है, वही दे दो बालक को ।" माँ ने आखिरी लाल (गुलेल) उठाकर बालक को दे दिया । बालक प्रसन्न हो गया । जब वह घर आई और सायं का भोजन बनाने लगी तो देखा घर में लवण (नमक) नहीं और पास पैसा नहीं, घर में गरीबी थी । विचार आया जो बालक के पास खिलौना है, किसी बनिये को देकर नमक ले आऊँ । वह बाजार में गई । एक बनिये को लाल दिखाकर कहा—यह ले लें और इसके बदले में मुझे नमक दे दो । अभी वह दिखा ही रही थी, कि अकस्मात एक धर्मात्मा जौहरी का उधर से गुज़रना हुआ । उसकी दृष्टि लाल पर पड़ी, शीघ्र

ही उस माई को कहा कि खिलौना मुझे दिखा । उसने दे दिया। जब अच्छी प्रकार से उसका निरीक्षण किया तो ज्ञान हुआ कि यह तो बहुमूल्य वस्तु है । वह भोली माई नमक के बदले दे रही है । जौहरी को दया आयी, और चार पैसे स्वयं बनिये को देकर कहा कि माई को इसका नमक दे दो ।

प्राचीन काल में सब चीज सस्ती थी, नमक का काफी बड़ा ढेला मिल गया । माई बड़ी प्रसन्न हो गयी और घर जाने लगी तो जौहरी ने बुलाकर कहा—माई अपने घर का पता बता दे । बोली—क्यों? जौहरी ने कहा—इस खिलौने की कीमत तेरे घर भेजनी है । माई बोली मुझे अब और कुछ नहीं चाहिए । यह नमक भी आशा से बहुत अधिक मिल गया है । परन्तु जौहरी तो धर्मात्मा, दयालु था, बोला—आपके घर भिजवा देंगे । वह अनसुनी करके घर चली गयी । यदि जौहरी चाहता तो लाल अपने पास रख सकता था, परन्तु वह पूर्ण धर्मात्मा, सदाचारी इस विचार वाले थे :—

"पर धन पत्थर मानिये पर त्रिय मातु समान ।
इतने में हरि न मिलै, तुलसी दास जमान !!"

'मातृवत परदारेषु, पर द्रव्याणि लोष्ठवत्,
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति सः पंडितः ।'

——वह इस पर दृढ़ विश्वास रखने वाले थे । बाजार में जाकर सब जौहरियों को बुलाकर उस लाल को सबके सामने रखा और कहा—निरीक्षण करके सही दाम बतावें ।

तो जो उसके गुरु थे, बोले—इसका दाम २४,००० रुपया

है। तो जौहरी ने उतना रुपया माई के घर में पहुंचा दिया। माई बोली—ये रुपया कहाँ से आ गया। जौहरी ने कहा—यह उस खिलौने का दाम है जो तू नमक के बदल दे रही थी। वह असमंजस में पड़ गयी और विचार आया—अब हम पूंजीपति बन गये। मेरा पति बिचारा खेत में पक्षी उड़ा रहा है। अब क्या आवश्यकता है कि वह जंगल में कष्ट उठावे? भागी गयी खेत में; अधिक खुशी हो तो बात मुख से नहीं निकलती है, बोली 'पतिदेव घर चलो, घर चलो।' पति बोला—क्या बात है? तो उसने फिर कहा—घर चलो, घर चलो।' स्पष्ट नहीं कह सकी। जाट ने सोचा जरूर कोई विशेष बात है। वह शीघ्र घर आ गया। देखा कि माया का ढेर लगा पड़ा है। बोला—ये रुपये कहाँ से आये? तो गृहणी ने कहा—जो खिलौना मटकी में पड़ा था, जिसे बालक देखकर रो रहा था। मैंने कहा था कि इसे बच्चे को दे दूं। आपने कहा, शीघ्र दे दो। यह सारा उस एक खिलौने का दाम है। सुनते ही जाट मूर्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। पत्नि ने सोचा था कि यह श्रवण कर मेरा पति प्रसन्न होगा। परन्तु वह तो इसके विपरीत व्याकुल होकर गिर पड़े हैं। तो शीघ्र ही सचेत करने का प्रयत्न किया। जब सचेत हुआ तो गृहणी ने कहा—दुखी क्यों हो गये? इतने में जौहरी भी पहुंच गये—तो जाट ने कहा—मेरे पास तो ऐसे सैकड़ों थे। यदि यह मुझे ज्ञान होता कि एक का इतना दाम है, तो मैं वृथा ही चिड़ियों के पीछे न उड़ाता। यदि सब मेरे पास होते तो मैं राजा बन जाता। इसलिए मूर्च्छा आ गयी। तो जौहरी ने कहा—'भाई

गयी सो गयी, अब राख रही को ।' (भाव—जो चले गये उनका शोक न कर जो तेरे पास धन है, यह भी बहुत है, इसका सदुपयोग कर) गृहस्थ का निर्वाह भी कर, साथ दान पुण्य कर परलोक का साधन भी बना। तो वह समझ गया और शीघ्र ही चिन्तामुक्त हो गया।

भगवान रामकृष्ण देव कहा करते थे—'जितना प्रेम मनुष्य पुत्रादि, स्त्री एवं माया के साथ करता है। यदि उतना ही ख्याल अपना भी करे (भाव-परमात्मा को पहिचाने) तो उसका जीवन दया धन हो जायेगा।' लोग, स्त्री, पुत्रादि सांसारिक हानि के लिये घड़ों आंसू बहाते हैं, किन्तु अपने लिए, अपने लक्ष्य के लिए (भगवत्प्रेम) कितने लोग आंसू बहाते हैं, इसी से उनकी पहिचान हो जाती है। रामायण में भी तुलसीदास जी ने इसी रहस्य को निबद्ध किया है।

'कामहि नारि पिआरि जिमी, लोभहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरन्तर प्रिय, लागहूँ मोहि राम॥'

यह तो द्रष्टाँत है। इसका भाव यह है कि जीव रूपी जाट को मानव शरीर रूपी मटकी, श्वांस रूपी लालों से भरी मिली। परन्तु अज्ञानता के कारण जीव ने जीवन के अमूल्य श्वासों को विषय-विकार रूपी पक्षियों के पीछे लुटा दिया। तो-जौहरी महान पुरुष, सन्त सतगुरु जिन्हें श्वांसों की कद्र होती है कि श्वास का त्रिलोकी मूल्य है, इस जीव रूपी जाट को चेतावनी देते हैं कि एक एक श्वास तेरा अमूल्य है। पंजाबी में कहा है

"प्रेमी दा दम बेला जावे उसनूं समझे सूली।
उसदा झुगा कीकुण वसे जिस अट्ठे पहर फजूली।

दम दम दा दरगाह विच लेखा चित्रगुप्त मासूली।
साईं लोक इक दम न सिरे, मति कोई पवे कबूलीं।
ऐसे दम दा आदम बणयां ऐसे दम दा मेला।
ऐसे दा मुल लख रुपैय्या, ऐसे दा मुल धेला।
दम दी कदर जिन्हां ने जानीं दम नहीं जादों वेला।
साईं लोका दम समझ गनीमत मानुष जन्म दुहेला।
नाम जपण नूं जिह्वा बनाई, हरि दरसन नूं अक्खीं।
इक इक श्वास अमोलक तेरा हत्थ न आवे लक्खीं।
चवी हजार दा खरच हमेशा आमदन मूल न थीवे।
जिस बन्दे नूं इतना घाटा सो बन्दा क्यों जीवे॥"

जब यहां श्वासों का इतना महत्व जीव को बताते हैं, तो जिज्ञासु श्रवण कर आयु पर बहुत पश्चाताप करता है, कि मेरा जीवन विषय विकारों में वृथा चला गया। कारण—

"माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माँहि।
मनुआ तो दसदिसि फिरै, यह तो सिमरन नाँहि।"

इसी चिन्ता में मानव मूर्च्छित हो जाता है, जो महापुरुष जौहरी हैं, कहते हैं—

"भाई गई सो गई, अब राख रही को।"

'पिछली बीती जानदे, अब आगे रहो सचेत।
बीज बोवो हरिनाम का, आयु रूपी खेत॥
स्वासों की कर सिमरनी, सोऽहम् का कर जाप।
लीन करो मन ब्रह्म में, दूर होंहि संताप।
मन मेहन्दी को घोट तूं, दम की कुण्डी मांहि।
आंसू पानी डाल तूं, लालो लाल दिखांहि॥'

तो महापुरुषों के पावन उपदेश, महावाक्य, श्रवण कर जिज्ञासु अन्तर्मुख हो श्वांसों का नाम जाप कर समाहित चित होता हुआ अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। वाणी से जो जाप किया जाता है, उसकी अपेक्षा श्वासों से अजपा जाप बहुत महत्व रखता ह। राज योग का यह विशेष एक अङ्ग है। जिसको शंकर भगवान ने पार्वती के प्रति कहा है —

'हकारेण बहिर्याति सकारेण विशेति पुनः।
हंस हंसेति मन्योऽयं जीवो जपति सर्वदा॥
गुरु वाक्याच्छुषमना विपरीतो भवेञ्जय।
सोहं सोऽहमिति प्राप्तो मन्त्रयोग स उच्यते॥'

हकार से बाहर, सकार से अन्दर हंस हँस सब जप करते हैं (भाव-स्वत: हो रहा है) गुरु कृपा से या गुरु शब्द से सुषुम्णा नाडी में उल्टा होकर हस की जगह 'सोऽहम्' हो जाता है। तो इसमें माला का आवश्यकता नहीं पड़ती। हरेक के भीतर यह माला चल रही है।

"घट में फिरे दिन रात रे, माला घट में फिरे दिन रात।
ऊपर आवे, नीचे जावे, स्वास स्वास चलि जात॥
संसारी नर समझे नांही, वृथा उमर वितात।
सोऽहम् मन्य जपे नित प्राणी, बिन जिह्वा, विन दांत॥
आठ पहर में, सोवत जागत, कबहूँ न पलक रूकात।
सतगुरु पूरा भेद बतावें, पूरण ब्रह्म दर्शात॥
ब्रह्मानन्द मोक्ष पद पावे बहुर जन्म नहिं आत॥"

तो मानव जीवन का सार वास्तव में यही है कि अन्तर मुख साधन कर साध्य की प्राप्ति करो। महान पुरुषों की

शरण में जाकर अपने लक्ष्य की पहिचान करे। बिना उपासना के उपास्य की प्राप्ति नहीं होती। पाठक बन्धु 'सोऽहम्' के रहस्य पे ध्यान दें :—

पिया स्वास स्वास में बोले। नित्य सोऽहम् जप नर भोले।
पिया हम तुम एक समाना।
बाहर नही ढूंढन जाना।
शौहण दें कोल ठिकाना।
क्यों इधर उधर जिया डोले॥ नित्य सोऽहम् जप नर भोले॥
मैं ढूँढ-ढूँढ पिया हारा।
छानी है दुनियाँ सारी।
घर भीतर कृष्ण मुरारी।
क्यों बाहर नैना खोले॥ नित्य सोऽहम् जप नर भोले॥
मन मंदिर खूब सजाना।
प्रियतम को बीच बिठना
त्रिकुटी में ध्यान जमाना।
कोई आस पास न बोले॥ नित्य सोऽहम् जप नर भोले
जब स्वास अन्दर को जावे।
तब 'सो' पर ध्यान लगावे।
'हम्' करे जो बाहर आवे॥
इस शब्द में सुरत परोले॥ नित्य सोहम् जप नर भोले॥
नित सोहं सोहं ध्याना।
स्वासों में सुरत जमाना।
नर से नटवर हो जाना॥
यह भेद गुरु ने खोले॥ नित्य सोऽहम् जप नर भोले॥

ओम् शम्

× × ×

साधना: नाम-जप द्वारा

अभी तक इसी विषय के पहलुओं पर विचार हुए। मान
जीवन के रहस्य का निगूढ़ यह निर्णीत हुआ–"यह तो ब
भाग्यों से जन्म-जन्मान्तरों में किये शुभ कर्मों के फल स्वरू
प्रभु कृपा से मिलता है।"

'बड़े भाग्य मानुष तन पावा।'

बल्कि गोस्वामी तुलसीदास जी तो कहते हैं कि देवत
मनुष्य तन को पाने के लिए लालायत रहते हैं। कारण कि
देव तन में केवल स्वर्गादि के शुभ कर्मों का फल भोगा ज
सकता है। उनका शरीर प्रभु प्राप्ति का साधन नही हो
सकता है। यह शास्त्रकारों द्वारा निर्णीत है कि मनुष्य स्थूल
सूक्ष्म और कारण देह को लेकर इस मायामय जगत में विच
रण करता रहता है। जब तक माया का भेद नही होता तब
तक महाकारण देह की प्राप्ति नहीं हो सकती। निखिल सत्य
है, कि स्थूल देह एवं अन्यान्य तीनों देह पंचभौतिक हैं। स्थूल
में अस्थि, त्वक् (खाल) आदि पांच पृथ्वी के, भेद, रक्त, रेत
आदि पांच जलके, क्षुधा, तृष्णा आदि पांच तेज के, दौड़ना,
चलना आदि पाँच वायु के और काम क्रोध लोभ आदि
पाँच आकाश भूत तत्व हैं। अन्य तीनों देहों में भी इसी प्रकार
के पञ्चभतों के तत्व हैं। प्रत्येक तत्व की पांच प्रकृति होती
हैं। इसी से स्थूल देह में पाँच तत्वों की पच्चीस प्रकृति हैं।

ओर इसी प्रकार अन्य तीनों देहों मे पच्चीस प्रकृति हैं 'साधन' के प्रभाव से (भाव-स्मरण, उपासना) स्थूल देह के पाँचों तत्त्वों को शनै शनै 'स्वलीन' करना पड़ता है। इसीलिये तो महापुरुष बार बार चेतावनी देते हैं कि ऐ मानव, इस दुर्लभ मनुष्य चोले को पाकर अविलम्ब इसका सदुपयोग कर, और इसी जन्म में अपने परमलक्ष्य की प्राप्ति के लिए सावधानी से जुट जा। ऐसा न हो कि यह सुनहला अवसर हाथ से जाता रहे और फिर चोरासी के चक्कर में घूमना पड़े। इस पर एक दृष्टान्त देते हैं—

एक कोई नेत्रहीन पथिक रात को किसी सराय में जा कर ठहरा। उस सराय में से बाहर निकलने के लिये केवल एक ही दरवाजा था। प्रातःकाल वह टटोलता टटोलटा चल पड़ा। जब दरवाजे के नज़दीक पहुंचा तो उसके सिर पर कुछ खुजली सी हो गयी। दीवार से हाथ उठाकर सिर को खुज-लाता गया और चलता भी गया। इसी दोरान में दरवाजा उससे चूक गया। फिर दीवार के सहारे दरवाज़े को टटोलता हुआ आगे चला गया। परन्तु दरवाजा आने पर हर बार उसको खुजली हो जाती। इस प्रकार उसको कई चक्कर काटने पड़े। एक दयालु पुरुष ने उसकी दशा देखी, उसको इस प्रकार चक्कर में घूमता हुआ देखकर उसको दया आयी और उसका हाथ पकड़ कर दरवाजे से बाहर करके चक्कर घूमने से उसको मुक्ति दिलवायी।

यह एक दृष्टान्त है। भाव इसका यह है—यह संसार

एक सराय है । ज्ञान रूपी नेत्र हीन यह जीव इसमें आकर ठहरा है । इस संसार रूपी सराय से बाहर निकलने का मनुष्य जन्म रूपी केवल एक ही दरवाजा है । चौरासी लाख योनियों में भटकता हुआ यह जीव जब भाग्यवश मनुष्य-जन्म को पाता है तो उसका विषय-भोग रूपी खुजली हो जाती है अर्थात वह मनुष्य जन्म को भोगवाद एवं विषय-विकारों में खो देता है और उसके फलस्वरुप फिर उसे चौरासी के चक्कर में घूमना पड़ता है । सौभाग्य वश यदि उस पर गुरु-कृपा हो जाती है तो गुरुदेव अपनी अकारण कृपा से उसको सदुपदेश देकर चौरासी के चक्कर में घूमने से उसको खलासी दिलाते हैं । इसीलिए तो जीवन मार्ग को प्रशस्त करने में गुरु का बहुत महत्व है । जैसे शास्त्रकार 'सियाराम,' "राधाकृष्ण", 'गौरी शंकर" आदि भगवद् नामों में क्रमशः 'सिया, राधा, और गौरी को आदि शक्ति मानते हैं । ठीक उसी प्रकार गुरु भी सांसारिक प्राणी के लिए एक आदि शक्ति होती है । बात सिर्फ विश्वास और निगूढ़ श्रद्धा की है । अपने आप का समर्पण करके अपने पथ का निर्देशन गुरु से पाना होता है । कबीर दास जी प्रमाणित करते हैं-

'कबीर वह नर अन्ध है, जो गुरु को माने और ।
हरि रूठे गुरु ठौर है गुरु रूठे नहीं ठौर ॥
गुरु, गोविन्द दोऊ खड़े, काके लाँगू पाँय ।
बलिहारी गुरुदेव की जिस, गोविन्द दियो मिलाये ॥'

शास्त्रकारों ने इसी विषय को खुलासा मान्यता प्रदान की है-

"गुरुर्ब्रह्मा गुरूर्विष्णु, गुरूर्देवो महेश्वराः।
गुरूसाक्षात् परब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः॥"

गुरू वाक्य ही वास्तविक मंत्र है, सही नाम जप है। ू के ज्ञान से ही गोविन्द की प्राप्ति होती है। अतः 'मुर्शद मिल' मिलने पर ही सही मंजिल का पता चलता है और धन, साध्य का भेद पता लगता है। गुरू कृपा का पात्र ुष्य तभी हो सकता है, जब वह अपने आप पर कृपा करता अर्थात जब वह आध्यात्म पथ का पथिक बनता है और वदर्शी गुरूदेव के चरणों में पहुँचता है। आत्म ज्योति तो एक के अन्दर जग मगा रही है।

'भीखा भूखा कोई नहीं, सबकी गठरी लाल।
आंख खोल देखत नहीं, इस विधि भये कँगाल॥'

सबकी शरीर रुपी गठरी में आत्मा रूपी लाल मौजूद हैं। लाल के होते हुए भी मानव कँगाल बना हुआ है तो इसका रण यह कि उसके ज्ञान के नेत्र बन्द पड़े हुए हैं। अज्ञान का र्दा है। जिससे वह आत्मदेव के दर्शन नहीं कर पाता है। ूदेव उसको बताते हैं कि 'तन के अन्दर मन है, और मन अन्दर हर है। इस स्थूल शरीर के अन्दर सूक्ष्म शरीर है र सूक्ष्म शरीर के अन्दर 'हरि' विराजमान हैं। श्री भग- ान गीता में बतलाते हैं—

"इन्द्रियाणि पराण्याहुरिन्द्रि येभ्यः परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्यो बुद्धे परतस्तु सः॥"

अर्थात इन्द्रियों से सूक्ष्म और श्रेष्ठ मन है। मन से श्रेष्ठ

बुद्धि है और जो बुद्धि से भी श्रेष्ठ और सूक्ष्म है, वा
आत्मा। आंख देखती है, कान सुनते हैं, नाक सूँघती
ज़बान रस लेती है और त्वचा (चमड़ा) गर्मी, सर्दी
का अनुभव करती है मन विचार तथा संशय (संकल्प-विक
करता है और बुद्धि निश्चय (आत्म-विश्वास) करती
परन्तु यह सब इन्द्रियाँ तथा मन और बुद्धि अ
की सत्ता के कारण ही, अपनी अपनी क्रियाओं
करने में समर्थ हैं। स्वयं तो यह सब जड़ हैं। इ
किसी भी क्रिया का होना सम्भव नहीं। मुर्दा शर
में आँख, नाक, कान आदि सब गोलक मौजूद होते हैं। मर
पर यह शरीर को छोड़कर चले तो नहीं जाते। परन्तु उ
दशा में आत्मा की सत्ता न मिलने पर आंखे देख नही सकती
कान सुन नहीं सकते, नाक सूंघ नहीं सकती, जबान रस नहीं
ले सकती, त्वचा स्पर्श नहीं कर सकती। अर्थात जाग्रत
अवस्था में जितनी भी क्रियाएँ होती हैं, वह आत्म-सत्ता के
कारण ही होती हैं—एक पश्चिमी विद्वान इसके बारे में
लिखते हैं:–

"The spirit of the lord goes before me and my
ealth, happiness, prosperity and success are assured."

भाव:–ईश्वर की आत्मा मेरे आगे आगे चलती है; अत:
रे लिए स्वास्थ्य, सुख, समृद्धि और सफलता निश्चित है।"
र्णय यह होता है कि ईश्वर में विश्वास, पूर्ण विश्वास
थ उस परमतत्व की उपासना या साधन और उसके

दात्म्य पोषक विचारों द्वारा हम अपने लक्ष्य में सफलता
प्त कर सकते हैं और मंगलमय लोक हितकारी जीवन का
र्माण कर सकते हैं। वही विद्वान ईश्वरीय मंगलमय प्रार्थना
जप) को अपने जीवन से बँधी हुई पाते हैं और अपने
चार की गूढ़ पुष्टि करते हैं:—

"The purpose of prayer is to change your thinking. iod does not change; His will is always, only good. ıll that keeps you from your good is your failure o unify yourself in thougut with the source of all ood, God."

भाव—प्रर्थना (उपासना) का उद्देश्य है-तुम्हारे चिंतन (भाव) की पद्धति में गहन परिवर्तन ला देना। ईश्वर में परिनर्तन नहीं होगा। ईश्वर तो सर्वदा, और पूरी तरह से मंगलमय है। फिर तुम मंगल से इतने दूर क्यों हो? कारण कि तुम्हारे पोषक विचारों (Positive thinking) ने विकार युक्त या विरोधी तत्वों (Negative tihnking) को आत्मसात् कर लिया है, जो मंगलमय सत्ता अर्थात ईश्वर से एकात्मता स्थापित नहीं कर पाते।

कहने का अर्थ यह है कि स्वप्न अवस्था में स्थूल शरीर तो चारपायी पर सोया होता है, परन्तु मन कहीं का कहीं भागता फिरता है। हम भी कई बार हरिद्वार में 'सोये हुए पहुँचे' हो आये हैं; सुषुप्ति (गाढ़ी नींद) की अवस्था में जागने पर हम कहते हैं कि रात को खूब नींद आई, होश ही नहीं रहा। किन्तु यह हमारा भ्रम है, इस बेहोशी को जानने वाला आत्म उस समय भी मौजूद था। तभी तो

मनुष्य को उस अज्ञान का ज्ञान होता है। भाव यह है कि आत
ज्योति तीनों अवस्थाओं में एक रूप में जगमगा रही है।

जिस प्रकार एक कीमती लाल को तिजोरी में सुरक्षि
रखा जाता है। उसी प्रकार आत्मा रूपी लाल को सुरक्षि
रखने के लिए ही शरीर रूपी तिजोरी बनायी गयी है—जि
प्रकार अलीगढ का ताला अपने किस्म का मशहूर है ठी
उसी प्रकार शरीर रूपी तिजोरी पर नाम-स्मरण (उपास
रूपी) रूपी ताला लगाना चाहिए, और इसकी ताली अप
सद्गुरु के श्री चरणों में समर्पण कर देनी चाहिए। औ
मिसाल दी जाती है। संतरे के रस को सुरक्षित रखने के लि
उस पर एक पतला सा छिलका और इस छिलके पर ए
मोटा सा छिलका (Cuticle) होता है। मोटे छिलके व
उतार कर फेंक दिया जाता है। बारीक छिलका भी उता
दिया जाता है और रस को ही ग्रहण किया जाता है। उस
प्रकार स्थूल शरीर और सूक्ष्म शरीर को विलग करके अन्द
छिपे हुए आत्मा को साक्षात्कार कराने की युक्ति गुरुदे
बतलाते हैं :—

'आंख, कान, मुँह ढांप के, नाम निरंजन ले।
अन्दर के पट तब खुले, जब बाहर के पट दे।'

श्री गुरुदेव की बताई हुई युक्ति को केवल सुनने मात्र
ही नहीं, बल्कि उस पर पूर्ण रूप से आचरण करने पर ही
साधक अपने परम लक्ष्य की प्राप्ति में सफल हो सकता है।

ओ३म् शम्

× × ×

उद्‌बोधन : अपना आप संभाल

साजन जीवन मुक्त बनाले।

मूरख बनकर क्यों सोता है ?

समय अकारथ क्यों खोता है ?

जीवन के पल-पल को पगले

आशायुक्त बनाले। साजन जीवन मुक्त बनाले।

काया समझ न रेत घरोंदा,

पगले यह है आश का डौंडा।

लख चौरासी भुगत मिला है—

अब तो सफल बनाले। साजन जीवन मुक्त बनाले।

कष्ट न हो यदि सुख के अन्तर,

सुख का अनुभव होता क्योंकर,

तोड़े फूल चुभें न काँटें—

अपना आप गँवाले। साजन जीवन मुक्त बनाले।

"......"मानव को जीवन का रहस्य समझना ही पड़ेगा। 'मानव' शब्द ही एक उद्‌बोधन है, जिसके विशेषण हैं "मैं कौन हूँ", 'कहाँ से आया हूँ?' 'कहाँ जाना है?' तो अब जीवन का सब राज़ खुल ही जावेगा। इसी खोज में जीवन का लक्ष्य समझ में आ जायेगा। इन तीन शब्दों की गहरायी में सब कुछ भरा है। खेद तो इस बात का है, मानव ने अपनी आंखे खोलकर आगे और पीछे नही देखा है।

यह निर्विवाद है कि मानव जीवन के दुःखों का अ
करने ही समय-समय पर महापुरुषों का भूतल
अवतरण होता रहा है। सृष्टि के आरम्भ से म
पुरुषों ने विचारा है कि जीवन की सबसे बड़ी यात
है—मृत्यु [आवागमन का चक्कर] अतः जीवन को मुक्त बन
के लिए जन्म-मरण का भेद समझना होगा। एक हिन्दी क
मानव के लिए प्रेरणामय शब्दों में कहते हैं—

"है बहुत बरसी धरित्री पर अमृत की धार,
पर नहीं अब तक सुशीतल हो सका संसार
भोग-लिप्सा आज भी लहरा रही उद्दाम,
बह रही असहाय नर की कामना निष्काम
दग्ध कर पर को, स्वयँ भी भोगता दुःख-दाह,
जा रहा मानव चला अब भी पुरानी राह।

यह ससार अब तक सुशीतल क्यों नहीं हो सका है
इसका कारण है हमारी दानव-प्रवृत्तियाँ जो हमारी मानवत
का संहार कर रही हैं। हमारा लक्ष्य हमारे ही हाथों गुम ह
गया है। पुरुष के जीवन का प्रधान लक्ष्य है—प्रकृति के विकार
से अपने आपको मुक्त करना। जब तक विकार उत्पन्न होते
रहेगें; तब तक मानव अविद्या से एवं प्रकृति से छुटकारा नह
पा सकता। कारण है स्थूल शरीर से कर्म करने पर एक तरंग
उठती है, और मन में एक विकार उत्पन्न होता है। इसीलिए
तो किसी ने कहा है :—

"वासना की यामिनी, जिसके तिमिर से हार।
हो रहा नर भ्रान्त, अपना आप ही आहार॥

पथ पिच्छल है अन्धकार में, खाई में गिरने का भय है।
अन्तस्तल में छिपी वासना का अभिनय मादक मधुमय है।"

भावः—वासना और विकारों का मधुर अभिनय हमें ाहार बनाये जा रहा है। इसीलिये तो महापुरुष वार-वार क ही स्वर में चेतावनी मंत्र फूंक रहे है कि "साजन जीवन फल बनाले।"

एक महापुरुष गाड़ी पर यात्रा कर रहे थे। साथ बैठे एक व्यक्ति ने उनसे प्रश्न किया, महाराज आप कहाँ से आये हो और आपको कहाँ जाना है? महापुरुष बोले—यदि इस बात का ज्ञान हो जावे तो शेष कुछ जानना नहीं रह जाता। वह इस मर्म को नहीं समझा। कहने लगा—भगवन यह तो सब गाड़ी के यात्री जानते हैं कि हम कौन हैं, कहाँ से आये हैं; और कहाँ जाना है? महापुरुष बोले—हमारा अनुमान है, कि गाड़ी में बैठा एकाध यात्री ही ठीक उत्तर दे सकेगा। प्रश्न करने वाले ने कहा—क्या सारे मूर्ख ही हैं, जो यह नहीं बता सकेगें कि हम कौन हैं, कहाँ से आये हैं और कहाँ जाना है? महापुरुष सन्त बोले—वास्तव में मूर्ख वही है, जो यह नहीं जानता—

"तुझे मालूम है किस वास्ते तूं बाग में आया।
यह क्या मतलब था जिस वास्ते सुल्तान ने भिजवाया।
न भूले से कोई दम भी इधर कुछ ध्यान फरमाया।
कि मैं हूँ कौन, जाता हूँ किधर, किस सिम्त से आया।"

—प्यारे, मानव शरीर को प्राप्त करके यदि इस मर्म को

नहीं जाना तो फिर कब जान पायेगा।

"लख चौरासी घूमकर, पौ पर अटकी आय।
अब के पौ जे न पड़ी, फेरि चौरासी जाय॥
देह मनुष्याँ जानलें, पौ बाराँ का दांव।
बड़े पुण्य कर मिली तुझे, मुफ्त न यार गँवाव॥"

फेर ना मिलसी जन्म मनुष्य दा,
एह वेला है प्रभु दे पावणे दा।
टूटा फल न डाली दे नाल लगे—
भन्ना मोती न फेरि घढ़ावणे दा।
टूटा शीशा न कारीगर फेर जोड़ें,
फिट्टा दूध न फेर जमावणे दा।
सब संत पुकारदें साईं लोका—
एह वेला है प्रभु वे पावणे दा॥

—रामायण में भगवान राम अपनी प्रजा को यही उपदे
रहे हैं कि:

'बड़े भाग्य मानुस तन पावा।
सुर दुर्लभ सद् ग्रन्थन गावा॥
साधन, धाम मोक्ष कर द्वारा।
पाहि न जिहिं परलोक सिधारा॥'

"सो परत्र दुख पावई, सिर धुनि धुनि पछताय।
कालहिं, कर्महिं, ईश्वरहिं, मिथ्या दोप लगाय॥"

सवाल यह है कि हृदय निष्काम होना चाहिए। परन्तु य
न कुछ जटिल सा प्रतीत होता है। क्योंकि अन्तःकरण प

सबसे बड़ा आकर्षण 'प्रेम' है । भाव यह है कि कामना और स्वार्थ ही माया है। जब तक कामना नष्ट नहीं होती, अपने आपका ख्याल होना जटिल सा प्रतीत होता है । रामायण में सुस्पष्ट कर दिया गया है—

'इंन्द्रिय द्वार झरोखा नाना । तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ।।
आवत देखहिं विषय बयारी । ते हठि देहि कपाट उघारी ।।
जब लग हृदय बसत खल नाना । लोभ, मोह, मत्सर, मद, माना ।।
ममता तमी तरून अँधियारी । राग, द्वेष, उलूक सुखकारी ।।
तब लग बसत जीव उर मांही । जब लगि प्रभु प्रताप रवि नाही ।।'

विषय बारि मन मीन भिन्न नहि होत कबहुँ पल एक ।
ताते सहौं विपति अति दारुन, जनमत जोनि अनेक ।।

"......यहाँ पर एक दृष्टान्त आपके समक्ष रखा जाता है, जिससे सब साधारण लोग समझ सकेंगे ।

भाव यही है कि किसी प्रकार मानव सचेत हो अपने जीवन का मूल्य समझे ।

"—एक निर्धन गृहस्थी के पास एक महा पुरुष आ गये । उसने आदर पूर्वक जलपान, भोजनादि से प्रेम पूर्वक सेवा की। चलते समय संत के मन में उनकी दीन दशा को देखकर दया आ गयी । 'सन्त हृदय नवनीत समाना'—संत का स्वतः ही स्वभाव कोमल होता है । दीन दुखी को देख स्वतः ही द्रवीभूत हो जाते हैं । संत के पास पारस की गीटी थी । निकाल कर बोले—भक्त ! तुमने हमारी सेवा की है, हम प्रसन्न हो कर यह पारस की गीटी तुम्हें देते हैं । इससे लोहा मंगा कर

जितना चाहो स्वर्ण बना लो। जिससे तेरी दरिद्रता दूर हो। जीवन सुख पूर्वक व्यतीत करो। परन्तु एक बात विशेष यान रहे कि केवल एक सप्ताह तक तुम्हारे पास गीटी रहेगी। फर एक क्षण भी तुम्हारे पास नहीं रखेंगे। यह कह कर हात्मा यात्रा को चले गये।

एक दो दिन तो तो उसने प्रमाद में इधर ध्यान ही हीं दिया। फिर विचार आया कि संत पारस की गीटी दे ये हैं, बाजार से लोहा खरीद कर स्वर्ण बना लूँ। बाजार या, कई दुकानें देखी, परन्तु भाव ही उसका नहीं बना। फर विचार आया किसी लोहे के कारखाने में सस्ता मिल वेगा. घर से प्रस्थान किया, वहां भी कई कारखाने देखने दो तीन दिन लगा दिये। अन्त में एक कारखाने से खरीद बिल्टी बनवाई। माल गाड़ी पर चढ़ाया, स्वयं घर पहुँचा ताह पूरा हो गया।

उधर वह महापुरुष भी पहुँच गये। उन्होंने पहुँच कर या देखा कि वही टूटी-फूटी झोंपड़ी जो पहले देख गये थे, वह ब भी है। क्या कारण है? सात दिन में तो कई मन ोना बन सकता था। सम्भव है भूल गया हो। जब सकी कुटीरमें पहुँचे तो वही दीन दशा देखकर चकित ो गये। पूछा—हमने तुम को पारस की गीटी ी थी, उससे स्वर्ण नहीं बनाया? कहने लगा—महा- ाज, यहां लोहे का भाव ठीक नहीं था, बाहर चला गया। ाशा है आज माल (भाव-लोहा) आ जावेगा। महापुरुष

बोले—अब हम एक क्षण भी तुम्हारे पास गोटी नहीं रखेंगे। दीन गृहस्थी बोला—एक दिन आप और कृपा करें तो मैं स्वर्ण बना लूंगा। महाराज बोले—हमारा वचन था कि सप्ताह के पश्चात हम लौटा लेंगे अब सप्ताह पूर्ण हो चुका है वह गोटी शीघ्र दे दो। वह रोने लगा। प्रार्थना की कि एक दिन और कृपा करो। संत बोले एक दिन क्या, एक क्षन भी नहीं देंगे। यह कह कर उससे पारस की गोटी लौटा ली। वह रोने लगा। परन्तु अब सब व्यर्थ था। कारण—समय चूक गया था—

काया भी बदनाम करी—
अफसोस कि खाली हाथ चले ।

—तो भाई यही समय है, अपनी जिन्दगी की कीमत
मझो । प्रमाद का त्याग कर किसी महापुरुष की शरण में
ाकर इस मर्म को समझो कि 'मैं कौन हूँ, कहां से आया हूं
ौर कहाँ जाऊँगा ?'

ओम् शम्

\+ \+ \+

वास्तविक प्रेम : समर्पण

प्रेम हो तो श्री हरि से प्रेम होना चाहिए।
जो बनें विषयों के प्रेमी उन पे रोना चाहिए।
बीज बो कर बाग के फल खाये हैं तुमने यदि—
वास्ते परलोक के भी कुछ तो बोना चाहिए।
मखमली गद्दियों पे सोये तुम यहाँ आराम से—
सफर लम्बे के लिए भी तो बिछौना चाहिए।
हैं हृदय में हरि, पर भक्ति बिन मिलते नहीं—
दूध में माखन जो चाहो तो बिलोना चाहिए!!

जीवन में त्याग और तपस्या, स्नेह और आत्म समर्पण की जितनी परम आवश्यकता है, उतनी भोग-वासना की नहीं क्योंकि भोग-वासना के विकार हमारी मानवता के ऊपर दानवता रूपी प्रेरणा बनकर प्रभावशाली हो जाते हैं—भाव यह है कि जब पशुता झाँकने लगती है तो मनुष्य कर्त्तव्य-निष्ठा और ज्ञान को भूलकर इन्द्रियों का दास बन जाता है और भोग वासना की ओर पागलों की तरह दौड़ने लगता है। यह सभी कामनायें हैं और कामनाएँ माया है। इस कामना को नष्ट करने का एक मात्र साधन है—प्रेम। प्रेम 'हरहर' से ताकि 'हरि से प्रेम हो सके।' क्योंकि हरि को हम हृदय से प्यार करेंगे तो उसका ध्यान सदैव हमें लगा रहेगा, कारण जिसको हम सबसे अधिक चाहते हैं, अथवा प्यार करते हैं;

दिन रात उसी के बारे में सोचते रहते हैं; यह स्मरण और चिन्तन हमें आनंद की अनुभूति प्रदान करता है। वैसे ही हरि का सदैव चिन्तन करने से हमें आनंद की अनुभूति होती है। 'हरि' से सच्चा प्रेम होने पर हम उसके प्रेम में मस्त और मतवाले बने रहेंगे। रामायण में आता है।

"मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा।
किये जोग, जप, नेम, बिरागा !!"

निर्णय यह हुआ कि मानव यदि अपने जीवन के लक्ष्य को जान ले तो जीवन वास्तव में जीवन बन जाये। नहीं तो वह एक चलती फिरती लाश है। सरोवर की शोभा जल के साथ है। मानव को शोभा मानवता कि साथ है, आत्म-समर्पण से है। यदि संसार का मानव यथार्थ रूप से मानव बन जाऐ तो सारे विश्व में शान्ति हो सकती है, समूचे विश्व का कल्याण हो सकता है। कबीरदास जी कहते हैं:—

"साधू ऐसा चाहिए, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गह ले, थोथा देत उडाय।"

मानव से मानव साधु (सद् पुरुष) बनता है। सद्-पुरुष बनने के लिए महापुरुष की शरण में जाकर ऐसे कहते हुए आत्म-समर्पण कर देना पड़ता है बिना खुदी मिटाये कुछ भी हासिल नहीं होता है:—

"मेरा मुझ में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागत है मोर !!"

जब मनुष्य में स्वार्थ की भावना आ जाती है। तब मान-

ा भाग जाती है, परमार्थ की सद्भावना नहीं आती।
निवृत्ति का संदेश महापुरुषों से ही प्राप्त हो सकता है।
ा मनुष्य हृदय से संत की शरण में आ जाता है, उसे मानव-
ीवन का रहस्य समझ में आ जाता है। नहीं तो—

'रैन गँवाई सोय के, दिवस गँवाया खाय।
हीरे जैसा जनम है, कौड़ी बदले जाय!!'

—यह मनुष्य जन्म ही हीरा जन्म है। इस हीरे जन्म के
दले संसार के विषय, विकार रूपी कौड़ियों की खरीद
रना भारी चूक (भूल) है। जो लोग इस अमोलक शरीर
ो पाकर सदा इन्द्रियों के विषयों में लवलीन रहते हैं, उसकी
मसाल उस भँगी जैसी समझनी चाहिए जिसको राजा ने
सन्न होकर स्वर्ण का थाल दिया था, और वह उस थाल
ें गन्दगी उठाता रहा। वह कथा इस प्रकार से है—

कहते हैं, एक राजा था, जो बड़ा धर्मात्मा, पवित्रात्मा,
प्रजा को पुत्र की भाँति जानता था। वृद्ध-अवस्था में प्रभु की
अनुकम्पा से उसके घर बालक का जन्म हुआ। उसने उसकी
खुशी में बहुत-कुछ पुण्य-दान किया। यहाँ तक कि गरीब
निर्धन को भी धनवान बना दिया। परन्तु एक भँगी रह गया
जिसका नाम गंगाराम था, वह राज दरबार का पुराना सेवक
था। अन्त में जब गंगे भँगी ने राजा को अभिवादन (सलाम)
कर बधाई दी तो राजा ने सोचा, इसको क्या इनाम देना
चाहिए। सामने एक कंचन का थाल था जिसमें हीरे जड़े थे।
वह उठाकर महाराज ने प्रसन्न चित्त हो भँगी को दे दिया।

भँगी थाल को पाकर बहुत प्रसन्न हुआ राजा को धन्यवा
करता हुआ अपने घर आया और वही थाल भंगिन के अ
रख दिया। भँगिन उस थाल को देख बड़ी प्रसन्न हुई, कह
लगी वाह। आज खूब टोकरी हाथ आई इसमें मैला उठऊँगी
ऐसी टोकरी किसी और बहिन के पास नहीं होगी। एक दि
भंगिन ने साफ कपड़े पहन लिय और थाल को सिर पर रख
कर मटक २ कर पाँव रखती हुई चल पड़ी, वह उस समय
किसी भगिन को खातिर तले नहीं रखती थी। क्योंकि वह इस
अहँकार में थी कि इस टोकरे जैसा टोकरा किसी भी भँगिन के
सिर पर नहीं है, जो करोड़ों रुपयों की कीमत रखने वाला
शुद्ध कँचन का थाल था। और जिसमें अमूल्य कीमती हीरे
और थाल जड़े थे। वह भंगिन उसकी क्या दुर्गति करने लगी,
लिखते दुख होता है। वह उस थाल से मैला, गन्दगी उठाने
। काम लेने लगी और चिरकाल तक वही काम लेती रही।
एक दिन राजमहल में गँगे पर महाराज की दृष्टि पड़ी, वही
पुराना सा हाल और तँगी की हालत थी। पूछा—अरे यह
क्या हाल बना रखा है, तुझे तो मैंने बहुत सा धन माल दिया
था जो तेरी सातों पुश्तें यदि बैठकर खातीं तो खतम न होता,
परन्तु तेरी वही पहली दशा है, इसका कारण क्या है?
गंगे ने झुककर कहा—हजूर का अति धन्यवद है। जब
से आपने उस थाल की बखशीश की है, तब से दुख से
छूट गया हूँ। निसंदेह वह थाल बहुत कीमती है। क्योंकि न
टूटता है, न फूटता है, न खराब होता है, न ही पुराना
होता है। पहले बड़ी दिक्कत होती थी, कि थोड़े दिन गुजरने

पर नई टोकरी खरीदनी पड़ती थी, परन्तु जब से थाल हाथ आया है, तब से इस मुसीबत से छूट गया हूँ। और यह थाल इतना सुख देता है, जिसकी कोई सीमा नहीं। राजा ने कहा—थाल को ले आओ। भागकर थाल लाकर राजा के आगे रक्खा। कहने लगा देखो हजूर अभी तक इसका कुछ नहीं बिगड़ा है, यह बड़ा ही मजबूत थाल है। राजा ने ज्यों ही उस थाल को देखा, उसको बड़ा दुःख हुआ, उसका हृदय अन्दर ही अन्दर दुखित हो गया। थाल उससे वापिस लेकर, उसके बदले में कुछ रुपये देकर उसे विदा किया।

—यही हाल इस मनुष्य का है। भगवान से उसे हीरा जन्म मिला है कि वह अपना इससे परलोक सुधारे, परन्तु इसने इस अनमोल जन्म से विषय-विकार रूपी गन्दगी उठाने का काम लिया और पापों में लग करके, इसको गन्दा कर दिया आप समझ गये होंगे कि मनुष्य वास्तव में क्या वस्तु है ? क्यों अपने पथ से भ्रष्ट हुआ ? फिर किस प्रकार अपने पथ पर चले और अपने लक्ष्य को पहचाने।

परमेश्वर रूपी राजा ने जीव रूपी गंगे को मनुष्य जन्म रूपी यह स्वर्ण का थाल दिया, यदि इसका जीव सदुपयोग करता तो स्वयं सुखी होता। साथ ही परमेश्वर प्रसन्न होता परन्तु दुरुपयोग करने से स्वय भी लाभ नहीं उठा सका। और भगवान से भी रुष्ट होकर मनुष्य जीवन लौटाकर फिर नीच योनियों में भाव पशु, पक्षियों की योनियों में जाना पड़ा। हमें सावधानी बरतनी चाहिये। भाव-मनुष्य तन पाकर अभी से

सदाचार : सत्सँग के द्वारा

मानव यदि जीवन के रहस्य को पूर्ण रूप से जान लें तो जीवन वास्तव में यथार्थ जीवन बन जाता है। संसार में रह कर संसार की यात्रा सुख पूर्वक व्यतीत करता है। परन्तु आज हम सभी उपासना, चिन्तन, धर्म, प्रार्थना आदि आध्यात्मिक कर्म-क्रियाओं के प्रति उदासीन हैं। 'अकालो नास्ति धर्मस्य'-के अनुसार धर्म कार्य किसी भी समय में हो सकते हैं। मनुष्य के आत्म-विकास के मूल में, जिस अध्यात्म शक्ति, ईश्वरीय तत्व, जिस दिव्य बल की आवश्यकता है, हम आज उसी की उपेक्षा कर रहे हैं। फलस्वरूप जगत घोर निराशा, अन्धकार, अशान्ति बैर, द्वेष, और हिंसा के जाल में फंसा हुआ, निरन्तर रसातल की ओर जा रहा है। जब तक हमारा मौजूदा आसपास का वातावरण बदलता नहीं, तबतक हमारी आँखें स्वयं नहीं खुल सकती हैं। क्योंकि हमारी आँखें गन्दगी देखने की आदी हो गयी हैं। अतः जीवन के इस मर्म को समझने के लिए, सदाचार गुण पाने के लिए, सत्संग की विशेष आवश्यकता है। अन्तकरण की खेती में जैसे संस्कार बीज रूप में पड़ेंगे, वैसो उपज होगी। मनुष्य जैसा सुनता है, जैसा देखता है, जैसा सोचता है, वही रूप स्वयं बन जाता है। बच्चा पैदा होते वक्त बिल्कुल अचेत होता है। उसे यह ज्ञान नहीं होता कि मैं कौन हूँ और क्यों आया हूँ। न उसे अपने की खबर होती है, न बेगाने की सुधि

रखता है। परन्तु ज्यों ज्यों उसके कानों में माता, पिता, मामा चाचा, भाई, बहिन, मासी आदि के शब्द पड़ने शुरू हो जाते हैं और वह संस्कार प्रतिदिन पड़ते हुए, उसके अन्दर दृढ़ हो जाते हैं तो वह भी एक दिन उसी रूप का बन जाता है इसी प्रकार जो लोग भले पुरुषों की संगति में बैठते हैं, वह भले बन जाते हैं, और जो बुरी संगत में रहने हैं, वह बुरे हो जाते हैं। यह सब संगति का प्रभाव है।

'सोहबते तालिया तुरा तालियाकुनद।
सोहबते सालियों तुरा सालियाकुनदः !!'

भाव— नेक सोहबत से नेक बन जाता है और बुरी संगति में बुरा बन जाता है। जैसी संगति-वैसी रंगत। एक विद्वान का कथन है—'स्वयं लगातार आप उजले कपड़े पहन कर जायं तो आपको सब पसंद करेंगे और आपका हृदय भी उजले कपड़ों वाले साथियों में ही बैठने की चेष्टा करेगा। क्योंकि संगत दोहरी प्रतिक्रिया प्रदान करती है। जैसा स्वयं करोगे, यदि उसे दूसरे पसंद करते हैं, तो आप तो हमेशा के लिए वैसा ही करते रहेंगे, किन्तु आपको वैसी ही तस्वीर की तलाश भी सदैव बनी रहेगी।' अतः संगत से रंगत का भाव है—आदान और प्रदान।

'जो जैसी संगति करे, तिन तैसो फल लीन।
कदली, सीप, भुजंग मुख, एक बूँद गुण तीन !!'

भाव—स्वाति बूँद केले में पड़े तो कपूर बन जाती है। यदि सीप में पड़े तो मोती और साँप में पड़े तो विष।

'———एक महात्मा किसी बाग में बैठे हुए थे। तो उस बाग में खट्टा और संगतरा वार्तालाप कर रहे थे। खट्टे ने कहा—ऐ संगतरे! तेरा संसार में बड़ा मान है। हर एक मनुष्य तुझको चाहता है। मुझ खट्टे को कोई नहीं चाहता। तेरी कीमत बाजार में तीन आने, चार आने हैं। हमें कोई नये पैसे में मुश्किल से खरीदता है।'

संगतरे ने कहा—'मैं भी तुम्हारा ही भाई था। परन्तु मैंने गर्दन कटाकर दुख पाकर यह दर्जा पाया है। यदि तुमने संगतरा बनना है तो माली के पास जाओ। वह तुम्हारी गर्दन काटकर संगतरे के पैवंद लगाकर तुम्हारी खटाई को हटा देगा।'

वह खट्टा माली से मिला और संगतरा बनने की इच्छा प्रकट की। माली ने कहा—संगतरा बनने के लिए तुम्हारी गर्दन काटनी पड़गी, यदि स्वीकार हो तो बना देंगे। खट्टे ने कहा—सहर्ष स्वीकार है। माली ने उसकी गर्दन काटकर संगतरे को पैवंद लगाकर बहुत अच्छा संगतरा बना दिया। तो वह खट्टा संगतरा बनकर चार चार आने में बिकने लगा। बेचने वाला आवाज देता है, "ले लो जी अच्छे संगतरे।"

भाव :—अच्छी संगति से तर गये। ऐसे ही छोटे स्वभाव के मनुष्य खट्टे की नाईं हैं। जब माली रूप गुरु की शरण में आते हैं कि हमको खोटे से खरा बनाओ, मनमुख से गुरुमुख बनाओ। तो कि महापुरुष दयालु है। वह अज्ञानता (भाव—अहंकार) की गर्दन काट कर ज्ञान का पैवंद लगा देते हैं। वह चीज पैबंद हो जाती है, वह फिर जन्म नहीं लेती। (त स

सब जीवन सो जीव मिले हित सों, और स्वान मिले न जंग बिना।
तुम अनेक उपाय करो जग में, पर ज्ञान न होय सत्संग बिना।'

भाव—सत्पुरुषों की संगति मे मानव अपने जीवन के लक्ष्य को समझकर जीवन हंसते हंसते व्यतीत कर अन्ततोगत्व मोक्ष को प्राप्त कर लेता है। हरमिलाप-संदेश को एक वर्ष पूरा हो गया जिसमें 'मानव जीवन रहस्य' बतलाया है, जैसी प्रभु ने प्रेरणा दी, समय समय पर। पाठक गण हंस वृति से अपने अपने कल्याण हेतु अब लाभान्वित हो। वही विचार एक बार दोहराते हैं—

'जीना ऐसा जीना होवे, जी न कोई कलपाये तूं।
मरना ऐसा मरना होवे, मरकर फिर न आये तूं।
तूं रोता हो सब हँसते हो, जिस वक्त यहाँ पर आये तूं।
सब रोते हों तूँ हँसता हो, जिस वक्त यहाँ से जाये तूं।'

उपसंहार कर रहे हैं कि इस प्रकार से जीवन हो, मानवता का संदेश आपके समक्ष हो। विशेष, यज्ञांक में तो 'श्री हरमिलाप साहब की गद्दी' का पावन इतिहास आपके सम्मुख आ रहा है। स्वयं तो लेखनी में शक्ति नहीं, जैसे प्रभु की प्रेरणा मिलती है, अपने हृदय के बिखरे विचारों को पाठकों के समक्ष रख देते हैं। आप सहर्ष स्वीकार करेंगे।

'आलम नहीं हूँ मैं कोई, फाजिल नहीं हूँ मैं कोई।
इक दर्द है दिल में मेरे, कहता हूँ सबके सामने !!'

'मुझमें कोई बात नजर आती है।
तो प्रभु तेरी इक जात नजर आती है।'

(जून १९६५अंक)

ओम् शम्

X X X

विनय :—लेखों का अलग नामीकरण (Heading) कर के यह पावन विचार पाठकों के समक्ष, कड़ी से कड़ी मिलाने की आदि भावना से रखा गया है। यह सभी विचार जो लेखों को ठाने में शामिल हुए हैं वह हमारी मानसिक उपज नहीं है, बल्कि श्री १०८ श्री मुनि जी हर मिलापी जी के जगह जगह सत्संग में दिये भाषणों का एकत्रण मात्र है। हमारी कोशिश तो इन लेखों को एक पूर्ण पुस्तिका में जो हर पाठक के घर में रामयण, श्री मद्भागवत्, महाभारत एवं अन्य धार्मिक, सदुपदेश प्रेरक पुस्तकों की भाँति अपना महत्व रख सके, रूप में लाना मात्र है। हाँ इसमें जितनी त्रुटियाँ हैं, वह अवश्य हमारी हैं—हम इसके लिये क्षमा याचक हैं।

—सम्पादक

ये फूल : ये गजरे

'तीर खाने की हवस है तो जिगर पैदाकर ।
सरफरोशी की तमन्ना है तो सर पैदाकर ॥
कौन सी-जाँ है, जहाँ जल्वा-ए-माशूक नहीं-
शौक़े-दीदार अगर है तो नज़र पैदाकर ॥'

× × ×

बीत गया सावन का महीना, मौसम ने नजरें बदलीं-
लेकिन इन प्यासी आँखो से अब तक आँसू बहते हैं ।
एक हमें वहशी कहना कोई बड़ा इल्ज़ाम नहीं—
दुनियाँ वाले दिल वालों को और बहुत कुछ कहते हैं ।

× × ×

सर्वे भवन्तु सुखिनः, सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु, मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत् ॥

× × ×

परहित बस जिनके मन-माहीं ।
तिन कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
जल-चर, थलचर, नभचर वासी ।
आखिर चारि लाख चौरासी ॥
सिया राम मय सब जग जानी ।
करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी ॥

× × ×

लगी आने में तुमको, शुक्र है फिर भी आये तो ।
स ने दिल का साथ न छोड़ा, वैसे हम घबड़ाये तो ।
क, धनक, महताब, घटाएँ, तारे, नग्में, बिजली, फूल,
दामन में क्या-क्या कुछ है, वो दामन हाथ में आये तो ॥

'हर' पनघट पे आता चल। निज कर्मांश बढ़ाता चल।
'हर' घट की है रीती गागर,—प्रेम-नीर बरसाता चल॥

सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन पर कहा न जाना॥
निज प्रताप द्रवै नवनीता।
पर दुःख द्रवं सो सन्त पुनीता।

दोहा:—श्री गुरू-चरण-सरोज रज, निज मन मुकर सुधार।
वरणो रघुवर विमल यश, जो दायक फल चार॥

प्रभु-प्रार्थना

लेकर मुझको निज गोदी में, करदो मेरा उद्धार प्रभो।
पापों के उछलते सागर से, मन की नौका को पार प्रभो॥
नित्य मुझको तुम्हारा ध्यान रहे, सर्वज्ञ सदा कल्याण रहे।
दिल में तेरा स्थान रहे, तुम हो जीवन आधार प्रभो॥
करदो मेरा उद्धार प्रभो॥

निशदिन तेरा गुणगान करूँ—हरदम मैं तेरा ध्यान धरूँ।
तेरी भक्ति पर मैं मान करूँ—शुभ हो मेरा आचार प्रभो॥
करदो मेरा उद्धार प्रभो॥

मृदु वचन सदा मुख से बोलूँ—जो कुछ बोलूँ पहिले तोलूँ॥
तेरे सच्चे पथ पर होलूँ—गुण गाऊँ बारम्बार प्रभो।
करदो मेरा उद्धार प्रभो॥

मुझसे कोई अपकार न हो—भोगों,विष ों से प्यार न हो।
हिंसा पर मन तैय्यार न हो—शुद्ध हो मेरा आहार प्रभो॥
करदो मेरा उद्धार प्रभो॥

—श्रध्देय बहन जीवन्मुक्तजी, अम्बाला

हरिमिलाप संदेश : आपके अपने विचार

(मानवता वादी समीक्षा)

(अ) जुलाई, १९६४—प्रवेशांक:—

१- मानवता वादीं कविताएँ एवं गीत:—मानव का क्या स्वरूप होना चाहिए? उसका अपना अस्तित्व क्या था, क्या हो गया है? सही अर्थों में मानव-जीवन की मंजिल किन आदर्श गुणों वाली राह से निर्देशित होनी चाहिए। आपके अपने विचार कुछ ऐसे रहे हैं:—

"दु:ख का अगर है खौफ न दुखियों के दिल दुखा
ठोकरें न खायेगा इन्हें ठोकर न तू लगा ॥
हर इक से प्यार कर किसी को न कर तू जुदा।
है 'हर्रमिलापी मिशन' का बस यही तो मुद्दा ॥
हे 'दास' जीव जीव का चाहवान बन के जी।
जीना है गर बशर तो फिर इन्सान बन के जी ॥

(हरनाम दास 'दास' बदायूँ)'

'जीव-जीव का चाहवान' बन के जीना है। यह सच्ची भक्ति है, जनता-जनार्दन की सच्ची पूजा है। 'वन्दे मानवम्' का सही फारमूला है। वरना जिन्दगी को व्यर्थ गंवाने के सिवाय और कुछ भी नहीं है। क्योंकि 'दारा रहा न जम न सिकन्दर सा बादशाह', जाना सभी को एक बार है। भारतवर्ष पुण्य भूमि है। कितना उच्चादर्श दिया है 'ताराचंद

आजाद' ने अपनी इन लाइनों में—

'मन्दा बोल के किसे नूं बोल जेकर
करदा किसे दी दुखी आतमा ऐ।
समझो उन्हें परमातमा दुखी कीता,
क्योंकि आतमा विच परमातमा ऐ।
गीत गा के ते हर मिलापियां दे
करदा जेहड़ा नी फुटदा खातमा ऐ।
गले उस नूं आप भगवान लावे,
ओहदे जैसा न कोई धर्मातमा ऐ।'
(श्री ताराचन्द 'आज़ाद', रामनगर, नई दिल्ली)

कविवर की आत्मा ने साक्षी होकर यह कह दिया कि 'हर में हरि' है तो क्यों किसी का दिल दुखाया जाए? क्यों न प्रेम की गंगा में गहरा गोता लगाया जावे? इन्सान को तंग करना, इन्सानियत के नियमों के खिलाफ एक पशु-वृत्ति है।

'किसी इंसान को इन्सां हो जो तंग करता है।
वह बागी है खुदा के साथ समझो जंग करता है।
खुदा गरीबों की सुनता है गौर से फरियाद-
असर अजीब दिले दर्दमंद रखता है।'
(संत श्री परमानन्द जी हरमिलाप-भवन, हरिद्वार)

संत शिरोमणि परमानन्द जी ने उठाने का सही तरीका ईजाद कर दिखाया है। जो बशर मानव को सिजदा नहीं कर सकता है वह प्रभु को सिजदा क्या करेगा?

"खुदा से मुहब्बत वह क्या करेगा।
जिसे कि नफरत है आदमी से ॥"

वाह क्या उन्माद आया है। खुमारी लाने वाली बात
कही है। आदमी से नफरत हटी कि सारी राहों की मुश्किलें
बदबखर आसान हो गयी हैं। खुदा का घर बनाने के लिए
नक्शे, पैमाइश की जरूरत नहीं पड़ती है। यहां तो नक्शा
ता है कैसा चाहिए।

'खुदा का घर बनाना है तो नक्शा ले किसी का दिल,
यह दीवारों की क्या तजवीज, है जाहिद यह छत कैसी ?'

दरो-दीवार की तजवीजें नहीं चाहिए। यह तो दिल का
ौदा है। प्रेम गली का मार्ग है। होना चाहिए इसमें कदम
खने वाला।

कदम रखने की प्रेरणा का नाम 'प्रेम तरंग' है। अपने
ाप में खोने, डूब जाने का एक प्रतीक है। कहना ही
ड़ता है–

'बैठा हुआ तो गरचे लोगों के दरम्यां हूं।
पर यह खबर नहीं है, मैं कौन हूं कहां हूं ॥'

हाय रे प्रियतम की याद। प्रेम का अद्वैत जबानी जमा
खर्च नहीं है। युवा हो जाने के बाद ही इसका एहसास होता
है। ठीक भी है– प्रेम गली अति सांकरा या में दो न समाय।
मानवता भी यही कहती है कि 'एकहि साधै, सब सधै'—यहां
द्वैत, दुई का सवाल ही पैदा नहीं होता है।

मैं वह तालिब हूँ कि मतलूब बना जाता हूँ।
मिलते मिलते तेरी सूरत में मिला जाता हूँ ॥'

(श्री जयभगवान शर्मा : प्रेम गली)

(२) अगस्त १९६४ अंक २—कोशिशे समझाने की विद्वान महापुरुषों द्वारा की जाती हैं। उम्र के हिसाब से लेकर कर्म के लेखा जोखा तक समझाया जाता है। सत-वाणी से यह पुकार आता है—'मानव हो जा, छोड़ के भवफंद सारे' —हर बार सांसारिक जीव को मानवता का पाठ पढ़ाने वाली यह आखिरी चेतावनी दी जाती है कि 'ऐ प्राणी ज़रा अपने आप को पहिचानो ? तूँ क्यों यहाँ आया है ?'

'अब भी संभल ओ तू मूरख अज्ञानी,
जिसे समझे अपनी, दुनियां है फ़ानी।
करे नाज़ जिसपे, ओ मूर्ख अभिमानी।
जीवन तेरा है खिलौना जापानी ॥
ज़रा चोट आयी न रहेगी निशानी,
अब भी वक्त है न कर तू नादानी ॥
करजा कोई काम जग में लासानी,
अमर जिससे हो जाए तेरी कहानी ॥
'आज़िज़' समझ अब भी ओ बेज़मीरे।
उमर घटती जाए तेरी धीरे धीरे ॥

(श्री 'आज़िज़' अम्बालवी)

'आज़िज़' जी ने आखिर प्रमाद में खोये; गफलत में खोये जीव को 'बज़मीर' तक कह दिया है। शायद कविवर

वही संदेश देना चाहते हैं कि—

'बिनु सतसंग विवेक न होई।
राम कृपा बिनु सुलभ न सोई॥'

दानाई इसी में है कि किसी महापुरुष की शरण में जाकर सिजदा करदे, अपने आप को समर्पण करदे। क्योंकि श्री नानक चन्द भाटिया (अम्बाला) ने सही बात को एक उदाहरण का कैसा स्वरूप बख्शा है।

'मेरे सतगुरु गरीबों से भी कितना प्यार करते हैं।
मुहब्बत ही जहाँ है और मुहब्बत हो खुदायी है॥
अगर बन्दे तू चाहता है कि मुश्किल दूर हो जाये-
तो सतगुरु की शरण में जा तेरी यही दानायी है॥

हाँ तो प्रेम-प्याला वहीं मिलता है जहां 'गुरु शामिल' है। गुरु कृपा हीन जीवन कोई जीवन है? गरीबों की आहें नहीं लेनी चाहिए। उन्हें प्रेम दृष्टि देना ही मानवता का सही स्वरूप है—किसी ने कहा भी है—

'चार देती है जगह तेज छुरी होती है।
खौफ कर आह, गरीबों की बुरी होती है॥'

अरे मानव, महापुरुष की खोज कर। उसको पाकर अपने आपको पहिचानने की कोशिश कर—

'प्रीति बहुत ससार में नाना विधि की होय।
उत्तम प्रीति सो जानिये, जो सतगुरु सो होय॥'

'जो सतगुरु स होये—' कैसा सुन्दर रास्ता है। ज़रा

एक दीवाना क्या कहता है ?—

'क्या मिलेगा दिल किसी का तोड के।
ले दुआ टूटे दिलों को जोड़ के॥'

दिल तोड़ने से क्या हासिल होना है ? मानसिक पीड़ा ही बढ़ती है। अशान्ति से धैर्य चला जाता है। कबीर दास जी कहते हैं :—

'कबीरा सोई पीर है जो मन जाने पर पीर।
जो पर पीर न जानिये, सो काफर बे पीर॥'

जो पर पीड़ा को नहीं समझता है; वह स्वार्थी है। मानवता की परिभाषा नहीं जानता है। 'परहित' द्वारा ही पर पीड़ा को जाना जा सकता है। वेदान्त का भी यही सार है।

"मानवता भी है यही, सब ग्रन्थन को लेख।
यही सार वेदान्त का हर में 'हरि' को देख॥"

यही प्रेम गली है जहाँ दुई का पर्दा उठ जाता है, क्योंकि यहाँ 'इश्क की इन्तहा' का सवाल पैदा होता है। दीवानगी मानवता के शिखर पर चढ़कर अपना पराया सभी भूल जाती है। कहना पड़ता है दिल की हसरतों को, क्योंकि उन्हें मानवता की सही दिशा दिखानी होती है—

'जनूने इश्क अब तेरा, यूं आलमगीर हो जाए।
कि जिस शै पे नज़र डालूं, तेरी तस्वीर हो जाए।'

ऐसी ही भावनाओं ने हिन्दू-संस्कृति को इतने अरसे तक

जीवित रखा है। क्योंकि "प्रत्येक मानव यही चाहता है कि इस जीवन में हमें शान्ति, आनन्द, निर्भयता और अन्त में सद्गति प्राप्त होनी चाहिए। इसके लिए मानव-धर्म संहिता को चार बातों की खास जरूरत होती है। भगवताचार, उद्योग (पुरुषार्थ) धैर्य एवं यथा लाभ आत्म संतोष... (कार्ष्णि हरिनाम दास उदासीन: हरमिलाप से हरिमिलाप)" इससे मानवता को बल मिलता है। यह ध्रुव सत्य है कि "समस्त विश्व के दार्शनिक, सभी तत्व वेत्ताओं, दार्शनिक एवं अवतारी महापुरुषों का एक ही उच्च स्वर में उदात्त बोल है कि आत्म शान्ति का एक मात्र अद्वितीय उपाय है - आध्यात्मवाद।" (चुटीले बोल: श्री १०८ महामण्डलेश्वर श्री स्वामी पूर्णानंद)

आज दिखायी क्या पड़ता है? "मनुष्यत्व विहीन प्राणी इस लोक में बहुत हैं। मनुष्यत्व (मानवता) का अभाव है और नितान्त अभाव है चरित्र का। प्रभु का चिंतन परमावश्यक है, जिससे मन की शुद्धि होती है। जड़ता एवं रूढ़ियाँ समाप्त होती हैं। अतः आध्यात्म का सहारा नहीं छोड़ना चाहिए।

—रावत चतुर्भुज चतुर्वेदी : मानवता किस में है?

' आध्यत्म जैसी गंगा में गोता लगाकर ही मानवता का लक्ष्य समझा जा सकता है। हमारे वेद, पुराण एवं स्मृतियाँ सब इसी एक बात की साक्षी हैं, रही थीं, और रहती रहेंगी।

(३) सितंबर १९६४, अंक ३

आपका अपना विचार है, अपनी प्रेरणा है। युगों युगों ऐसा ही होता आया है। माया, मोह से छुटकारे की प्रेरणा दी जाती हैं।

हर क्षण तेरी आयु जा रही है। यह अनमोल मानवता का खजाना बिना उपयोग के ही लुट रहा है—

'हीरा जन्म ये तेरा, इसे यूं ही ना गंवा दें,
स्वासों का ये खजाना, ना मुफ्त में लुटादे।'

—श्री शादी लाल 'शाद', गीतभूषण

हम गर्त में क्यों जा रहे हैं। हमारा पतन का मुख्य कारण है, हमारी मानसिक क्षुद्रता, हमारी शारीरिक भौतिक वादिता, जिसने हमारे हृदय में स्वार्थ, अहंकार जंमी राख करने वाली चिन्गारी पैदा करदी है। हर बार मानवता जागी है, चिल्लायी है। उसने पुकार-२ कर कहा है—

'ठोकरें क्यों खाये इन्सान।
मन-मंदिर में तेरे भगवान।
खोल कर नैन, खोलकर कान-
न हो हैवान, न बन शैतान॥'

—श्री 'प्रदीप' जयपुरी : ठोकरें क्यों खाये इन्सान :

क्या ही ताज्जुब की बात है—हमारे हृदय में सच्चिदानन्द घन परमात्मा समाये हैं और हमारी आंखे बंद हैं। हमारे कान बहरे हुए जा रहे हैं। हम इन्सान होकर शैतान और हैवान की उपाधियों से कलंकित किए जा रहे हैं। कितना

लज्जास्पद विषय है, इसका कारण है—'हमारा अन्तर्निहित स्वार्थ एवं अहङ्कार ।

"तेरे सीने में गर दिल है तो दिल में प्यार पैदा कर ।
जब हो जाए प्यार पैदा, प्यार में उपकार पैदा कर ।
फिर उस उपकार से दुखियों के दिल में ढार पैदा कर ।
इसी संसार में तूं इक नया संसार पैदा कर ।
तो जीने के लिए जीवन में इक निखार पैदा कर ।
ये सब कुछ कर मगर न भूलकर अहकार पैदा कर ।।"

—श्री हरनाम दास "दास," बदायूं

कितना अचूक नुस्खा है, अहंकारादि रोग से सहज ही छुटकारा पाने का । किन्तु किया क्या जाये । अहंकार का 'तेरा-मेरा', स्वर्ण समान महलों के स्वार्थ, मिथ्या सोच और मिथ्या विचार के प्रमाद और हमारी वासनाओं ने हमें इस कदर दबा रखा है कि हमारी मानवता खोखली नज़र आ रही है । किसी ने सूक्ति में कहा है—

"मन पंछी तब लग उड़ै, विषय वासना मांहि ।
प्रेम-बाज की झपट में, जब लग आयो नांहि ।"
'दम्भ-कपट को त्याग कर, सरल रखो व्यवहार ।
अन्तर मुख साधन करो, यही जीवन को सार ।।'

जीवन का सार भी हमें मालूम हो गया है । बहुत से महापुरुषों ने कहा भी है—

"सीने में जिसे यार को, सीना नहीं आता ।
सच मानिए नादान को, जीना नहीं आता ।

तू इन्साँ है हैवां नही, कर यादे-खुदा तू—
मयखाने में आकर तुझे पीना नहीं आता ॥"

कितनी सुन्दर मिसाल है—किन्तु जरा 'आजिज़' जी व
कहते हैं—उनकी बात भी आदरणीय है—

'दुनियाँ के झंझटों में, जीवन गंवाये क्यों ?
बोझा गुनाहों का भारी, सिर पर उठाये क्यों?
मित्र को चढ़ा बाम में, नीचे गिराये क्यों ?
वायदा खिलाफी करके, उसका जी जलाये क्यों?
कौले-सखुन निभाने को, स्वर का अलाप करले।
मौका है, इस जन्म में 'हर' से मिलाप करलें॥

(श्री 'आजिज़', अम्बालवी

एक और मानवता वादी उदाहरण है

'यह दुनियां कर्म की खेती है।
जो बीजे वह फल देती है॥'

'मिला जो उस पर सब्र गुज़ार।
न एक-दूजे पर हाथ-पसार।
नाम-वाणी से करो पुकार।
यही का यही, सभी है मज़ार॥'

पगले ! हर में हरि पहचान।
प्रेम - गंगा में कर - स्नान।
दीप से दीप 'प्रदीप' जला।
ज़मीं रौशन और आसमान॥

(श्री 'प्रदीप' जयपुरी, देहली-३४)

किया क्या जाये ? हमारी तृष्णा नहीं मिटती है। हमारी विकार-वृतियाँ हमें पतन की ओर ले जा रही हैं। कोई विरला ही प्रभु-प्रेमी इस दुविधा को दूर कर सकता है— नियमहीन जीना भी कोई जीना है। नियम कोई विरला महापुरुष ही दे सकता है। क्योंकि 'यह दुनिया है, प्रभु प्रेमियों—

'ज्ञानी ध्यानी, संयमी, दाता, शूर, अनेक।
जपिया, तपिया बहुत हैं, शीलवन्त कोई एक॥'

और कहने को सभी यह उपदेश देते हैं—

'नाम भजो मन वश करो, यही बात है तन्त।
काई को पढ़ि पच मरौ, कोटि न ज्ञान ग्रंथ॥'

अतः 'वह शीलवन्त' मिलना चाहिए। तभी कहीं यह सम्भव हो सकता है। यह शीलवन्त ही गुरु (गु=अन्धकार रु—प्रकाश) हो सकता है। गुरु ही गोविन्द का स्वरूप होता है। क्योंकि उसमें यही गुण होता है—जैसा कि कबीरदास जी कहते हैं—

"अब तो आप चढ़े सिंहासन, मिल गया सारंग पानि।
राम कबीरा एक-एक भये, अब को सके पहचानी।"

पहिचान अपने आपकी हो जाये। कोई गुरु मिल जाये तो गोविन्द अवश्य मिल जायेगा। यहीं मानव-देह धारण करने का लक्ष्य पूरा हो जाता है। क्योंकि किसी ने कहा भी है—

'गुरु गोविन्द दोनों खड़े, किसके लागूँ पाँय।
वलिहारी गुरु देव की, जिन गोविन्द दियो बताय॥

आजकल ऐसे महान पुरुषों की कितनी आवश्यकता है जो सांसारिक जीवों को कर्मयोग का पावन संदेश दे सकें। 'क्योंकि सत्पुरुष सदा एक भगवान की आशा रखते हैं। धन को धर्म पर न्यौछावर करते हैं। क्योंकि संसार में प्राणियों को दो हिस्सों में बाँटा गया है। गुरुमुख (सत्पुरुष) दूसरे मनमुख अर्थात् प्राकृत और पामर आदि। यह बात तो सत्य हो गई कि गुरु-महिमा अवश्य ही उत्तम फलदायिनी होती है। संसार में साधारण से साधारण गुण को सीखने के लिए किसी न किसी ज्ञानी, विद्वान महापुरुष की जरूरत होती है।''

'ध्यान मूलं गुरु मूर्ति, पूजा मूलंम गुरु पदम।
मंत्र मूलं गुरुवाक्यं, मोक्ष मूलम गुरु कृपा॥'

तो फिर प्रभु प्राप्ति का वह मार्ग कठिन है, पुराणों, स्मृतियों एवं वेदों में छुरे की न्याईं दुष्तर वताया है, विना किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु की सहायता के कैसे तय हो सकता है? यों तो सभी कहते हैं 'मुझे फलां से प्रेम है' किन्तु प्रेम क्या है? बड़ा कठिन है यह रास्ता—

'प्रेम प्रेम सव कोई कहे, कठिन प्रेम की रीति।
आदि अन्त पूरी निभै, तभी जानिये प्रीति॥'

आदि-अन्त निभाने के लिए किसी मुर्शद कामल की जरूरत है। इसके लिए धैर्य, शान्ति और संतोप की वड़ी जरूरत

'गुरु कामल, शिष्य आमल खुदा शामल।' अतः हे मानव.
—"सत्य वह सुरभित सुमन है, जो मसलने पर भी सुगन्धि देता है।"

"हर से मिलाप करो, हरि से, मिलाप होय।
द्वन्द मिटे मन का, सब जग अपना होय।।"

(४) **अक्तूबर १६६४** :—मनुष्य में हर समय एकत्व भाव नहीं रहता है। परिवर्तनशील विचार ही उसकी अशान्ति का कारण है। "यह निर्विवाद सत्य है कि मनुष्य को जीवन में सरसता एवं आनन्द लाने के लिए संतुलन एवं समन्वय स्थापित करना जरूरी है। अपने को पहिचानना और सहज स्वाभाविक रूप से रहना यही दो बातें सभी सन्तों की वाणी में हैं—

सूरदास के शब्दों में—

अपनौ आपहि में विसरयौ।
जैसे श्वान काच मन्दिर में भ्रम वश भूस मरयौ।
ज्यों केहरि प्रतिबिम्ब देखकर कूपहिं कूद परयौ।।

नानक जी की भी यही समीक्षा है—

'बाहर भीतर एकहि जानो यह गुरु ज्ञान बताई।
जब नानक' बिन आपा चीन्हे मिटे न भ्रम की काई।।'

—श्री पं० गणिपति लाल श्रोत्रिय : अपने को पहिचानों

अपने आपको पहिचानना आसान नहीं है। बड़ा दुष्तर काम है। बिना अपने आपको मिटाये हासिल नहीं हो सकता है। 'मैं-मेरा',' 'तू-तेरा' का विवाद जब तक समाप्त नहीं हो

ाता है, तब तक चित्त का दयालु, शान्त एवं हितकारी बन सकना असम्भवहै। कबीर जी ने स्पष्ट कर दिया है इस उलझन को—

'मैं-मेरे की जेवरी बट बांधा संसार।
दास कबीरा क्यों बंधै जाके नाम अधार।
मैं-मेरा संसार है अन्य नहीं संसार।
हिय से मैं मेरा नसै, हो जाय बेड़ा पार॥'
'मैं-मेरी जब ते छुटी, मिटा मोह का फंद।
जित देखो, उत ही दिखै पूरण परमानंद॥'

अक्षरशः यह सत्य है—

'हर में हरि निहार के, हर से करो मिलाप।
घृणा, द्वेष फिर क्यों रहे, सब में अपना आप॥

मनुज को मन, बुद्धि एवं आत्मा का जो सुन्दर सामंजस्य प्राप्त हुआ है, यह जगत नियन्ता की सबसे बड़ी कला कृति है। प्राणीमात्र में प्यार भाव रखना ईश्वर की सच्ची पूजा है। हमारा मानसिक चिन्तनाधार परहित होना चाहिए क्योंकि श्रुति भगवती कहती हैं—

श्रुति—उत्तिष्ठत जागृत प्राप्य वरान्निबोधत,
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया—
दुर्गम पथस्तत् कवयो वदन्ति—

भाव:—उठो, जागो, महापुरुषों की शरण में प्राप्त होकर ज्ञान को प्राप्त करो। यह परमार्थ पथ बहुत ही तेज धार वाले उस्तरे के समान तीखा है इस पर चलना अत्यन्त

कठिन है। इसे कवि (ज्ञानी) लोग अति दुर्गम बताते हैं।

यही उदाहरण श्री 'खादिम' के शब्दों में—

यह वो रहबर हैं जो सच की राह दिखाते हैं।
बाजू पकड़ के ये सीधी राह पे लाते हैं॥
तुम भी 'खादिम' इन्हें रिझालो।
सतगुरु को अपना तुम बना लो !!

\+ \+ \+

(५) **नवम्बर १९६४ अंक**:—ईश्वर आत्मा का विषय है। अनुभव गम्य है। ईश्वर बुद्धि का विषय है। वह सदैव बुद्धि अर्थात् ज्ञान चक्षुओं द्वारा ही देखा जा सकता है। वास्तव में ईश्वर को ज्ञान-विज्ञान दोनों के योग द्वारा देख सकते हैं। चूंकि सत्य सदैव सत्य रहता है और ईश्वर सत्य है।

—श्री रामसेवक शर्मा : ईश्वर है या नहीं

अनीश्वरवादियों की बुद्धि के लिए यहाँ स्थान नहीं है। योंकि वह प्रत्येक कर्म को अपने हाथों का खिलौना मात्र मझ लेते हैं। ऐसे सज्जनों से एक ही प्रश्न है कि वह कौन ?' प्राणियों में उत्थान-पतन के अनेक कारण होते हैं, उसमें :संग भी एक बड़ा कारण है। शून्यवादियों अथवा अनीश्वर- दियों को सुलभ सत्संग की कमी अक्सर रहती है। ज्ञान स्तृत है। क्योंकि पहिले प्राप्त होने वाला 'ज्ञान' होता है। के बाद जिसे बुद्धि मन के सहयोग से, हासिल करती है, विज्ञान होता है। पिछले प्राप्त ज्ञान की खोज करके

सत्य-असत्य का प्रतिपादन करना ही अभिज्ञान होता है। यह सभी बातें सत्संग के बगैर असम्भव होती हैं।

जीवन के दो पहलुओं (जन्म-मरण) की विवेचना से दो क्षेत्र सामने आते हैं। पहला भौतिकवाद, जिसे सभी परख रहे हैं, साथ-साथ चल रहे हैं। दूसरा है आध्यात्मवाद। दूसरे को महापुरुषों की श्री वाणी द्वारा अनुभव किया जा सकता है। सांसारिक समस्त पदार्थ परमपिता परमात्मा अथवा मुर्शद कामल की मेहरबानी से ही प्राप्त होते हैं। किन्तु इसके लिए मनुष्य को कर्म अवश्य करना पड़ता है। मानव जिस प्रकार के कर्म करता है उसी प्रकार का परिणाम उसे भोगना पड़ता है। कर्म तीन प्रकार के होते हैं—संचित कर्म, प्रारब्ध एवं क्रियामान और प्रतिक्रिया की परख से सकाम एवं निष्काम कर्म।

—श्री के० सी० वर्मा : ससार का आधार

स्थूल दृष्टिकोण के बाद जब तात्विक दृष्टिकोण से यदि विचार किया जावे तो जो सुख हमें दिखाई पड़ रहा है, वह सच्चा सुख नहीं है। यह कोरी मृग तृष्णाएँ हैं। सच्चा सुखी वह है जिससे अपने आप को यह कहकर गुरु चरणों में सौंप दिया है :—

'मेरा मुझमें कुछ नही, जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौपते, क्या लागत है मोर ॥'

इतिहास, पुराण, स्मृतियां एवं वेद इसके साक्षी हैं : 'सत्संग की गंगा ज्ञान की गंगा होती है और महापुरुषों की सेवा मोक्ष का द्वार है। ऐसे द्वार को छोड़कर स्वार्थवश

इधर-उधर भटकना ही मृगतृष्णा है।' शायद इसीलिए संत कबीर ने कहा है :—

'कबीर वह नर अन्ध है, गुरु को माने और।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर॥'

अतः मानवता यही कहती है हमारी आत्मा यही आवाज देती है—

"मन मथुरा, दिल द्वारिका, काया काशी चान।
दशम द्वार के बीच में करो श्याम का ध्यान!!"

(६) **दिसम्बर १९६४ अंक**:—ईश्वर व्यापक है। 'हर' में 'हरि' समाया हुआ है। उसकी उपासना, उसका चिन्तन करना हम सब (मनुष्यों) का प्रथम कर्तव्य है। तन को कपड़ा, पेट को रोटी की जितनी जरूरी होती है, उतनी ही जरूरी है अपनी आत्मा की गुप्त सूक्ष्म आवाज को पहिचानना। विद्वानों का ऐसा मत है। श्रुति ब्रह्मवेत्ता को ही ब्रह्म-स्वरूप की प्राप्ति बता रही है। अर्थात् अनात्मवित् को ब्रह्म के स्थान पर अब्रह्म-भाव, जीव-भाव, जन्म-मरण-बन्धन का ही संकेत कर रही है।

'ब्रह्मविदा प्रोति परम्' भाव यह है कि ब्रह्म को जानने वाला ही परमतत्व को प्राप्त होता है। इतना ही नहीं 'सत्य ज्ञानमनन्तं ब्रह्म'—अर्थात् ब्रह्म सत्य-स्वरूप तथा अन्त-विनाश आदि से रहित, सुख-स्वरूप परिपूर्ण अर्थात् अनन्त है।

—श्री महात्मा दौलतराम : हृदय गुहा में ब्रह्म
'सत्य ज्ञानमनन्त् ब्रह्म'

सत्य भाव भी यही है ? वास्तव सत्य भाव का स्वरूप वेदों में ऐसा बताया है कि वह तत्व भूत, भविष्यन् एवं वर्तमान तीनों कालों में एकरस है, निर्विकार है, कभी नहीं बदलता है।

"प्रश्न गूढ़ है, तत्वमय है। आखिर इस अपरिवर्तनशील सत्य को कैसे पाया जा सकता है। छोटा-सा सूत्र पं० गणपति लाल श्रोत्रिय (अपने को पहिचानो) ने विवेचित किया है ?

"खुदी का जब उठा पर्दा, अजब यह माजरा देखा।
कि बंदा जिसको कहता था, उसी को बस खुदा देखा।
जमाना मुझमें बसता है, बसा हूँ मैं जमाने में—
दो आलम खतम होते हैं, जरा आपा मिटाने में !"

स्वामी विवेकानन्द ने सत्य को प्रकट किया—'मनुष्य का हृदय सबसे बड़ा मंदिर है और इसी मंदिर में उसकी आराधना करनी होगी।" इसी मत का सिद्धान्त रूप दिया है, परम श्रद्धेय बहन जीवन्मुक्त जी अम्बाला (सतचित्त आनन्द में) ने—

"जीव ईश और जगत को आतम जाने जोय।
मन जिव भावै तिउ रहै, ताहि न रोके कोय ।।
जीव हस और ब्रह्म है, जासी इक बखान।
यही अर्थ सही बचन का, बुद्धि-बल जानो जान ! !"

निर्णय यह हुआ कि बुद्धिमानों ने जीव, ब्रह्म, और ईश्वर को एक माना है। फिर सत्य असत्य का निर्णय कैसे हो ? इसका उत्तर वही एक बात है—

"गुरु विन भव-निधि तरै न कोई।
जो विरंच शंकर सम होई!!
जिन हरि भक्ति हृदय नहीं मानी।
जीवत भव समान ते प्राणी!!"

पहिली तलाश महापुरुषों का सत्संग और फिर उसके द्वारा निर्देशित मार्ग पर चलकर मानवता के लक्ष्य को पूरा करना ही शुभ-कर्म है।

कितना सुन्दर वर्णन किया है, श्री परिपूर्णानंद 'गिरि' (श्री राम की याद) ने—

"सो लिया सीने में जिसने सीतापति है राम को।
हो गया बस अलविदा सब रंजो-गम आलाम को!!
सीना क्या है याद रखना राम सबका आत्मा।
भूल जाना खुद को और दुनियां के ख्याले-खाम को॥'

किन्तु उस प्रियतम के लिए तैयारियों की जरूरत है। दिल की शुद्धि की आवश्यकता है। मन मंदिर में सफाई की सख्त जरूरत है! क्योंकि

'उससे मिलने का तरीका,
अपने खो जाने में हैं।'—

अपनापन कब खोया जा सकता है? यही प्रश्न मानवता के चरम लक्ष्य की ओर शान दार कदम होगा। किसी प्रपंच की दरकार नहीं है। किन्तु दरकार है अपने आपको समर्पण की! भाव यह है कि समत्व भावना से अपनी बुद्धि को शुद्ध करना होगा!

"दिल का हुजरा साफ कर, जाना के आने के लिए !!"
दे उठा ख्याले गैर को, उसको बिठाने के लिए !!

इसमें शबनम की तरह नहीं रोना पड़ता है, अपितु दरिया बहाने पड़ते हैं गैर का ख्याल हटा कर प्रियतम की याद बसाना एक दर्दे दिल का सौदा है। एक लम्बी कहानी है, दास्तान है। अतः संत श्री परमानंद उदासीन ने अपने लेख 'दर्दे-दिल' में छोटा सा सूत्र बताया है, जिससे सत् और असत् का प्रश्न सहज में हासिल हो जाता है।

"किसी को शाद कर देना, खुदा को शाद करना है।
किसी का दुःख मिटा देना, खुदा को याद करना है।
किसी के काम आ जाना, खुदा का नाम लेना है।
गरीबों की मदद करना, खुदा को दान देना है !!"

अतः हे मानव, (जीव) निस्वार्थ भाव से, अपने आप का आत्म-समर्पण गुरु के श्री चरणों में करते हुए, मानसिक शुद्धि के साथ, एक लग्न यही मंत्रोच्चारण करो :—

ओम् बोलो,
मीत मेरे,
सारा सार, पारावार है।
व्योम खोलो,
मीत मेरे,
'ओं' धूलि आँगन-आगार है।
लीन हो लो,
मीत मेरे,

भव-द्वन्द है, पतवार है !!
रोम खोलो,
मीत मेरे,
'अकार' 'उ' शक्ति मकार है !!

(श्री 'प्रदीप' जयपुरी : 'ओ३म्')

\+ \+ \+

जनवरी १६६५ :—मनुष्य जीवन कई एक कड़ियों से जुड़ा हुआ है। आशा-निराशा, दुःख-सुख, संयोग-वियोग एव जन्म-मरण आदि सभी कड़ियां ही हैं। विद्वानों ने जीवन में दुःख, संतापों को 'पंच क्लेश' आदि नाम से पुकारा है। इन क्लेशों से जीव नाना प्रकार के कष्टों को भोगता है, विविध प्रकार की परिस्थितियों से गुज़रना पड़ता है। कारण क्या है योगी पतञ्जलि लिखते हैं :— अविद्यास्मिता राग द्वेषाभिनिवेशाः कलेशाः," अर्थात् तात्पर्य यह है जब तक अविद्या, अष्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, ये पांच क्लेश अन्तकरण में समाये रहते हैं।

(श्री १०८ श्री स्वामी पूर्णानंद जी : पंच क्लेशों की निवृत्ति)

अज्ञानता हमेशा चित्त को चलायमान रखती है। चित्त दोनों अवस्थाओं में चलायमान रहता है। यह अनुभव परम्परा में ज्ञातव्य वस्तु का ही परिवर्तन दिखाई देता है, परन्तु ज्ञाता का नहीं क्योंकि वह सर्वदा अपने स्वरूप में रहता है। आचार्यों का कथन है कि प्रमाण आदि सकल

ावहारों का आश्रय ही आत्मा है। आत्मा का निराकरण
हीं हो सकता है।
श्री स्वामी लोचनानन्द जी : आत्म ज्ञान की स्वयं सिद्धि)

चूंकि आत्मा निराकरण से परे की वस्तु है। और अभीष्ट
ो यही होता है कि "चित्त वैराग्य का मूल्यांकन करले !"
ास्तविक वैराग्य तो वह है कि संसार में रहे, किन्तु उसकी
सारता के गूढ़ तत्व से परिचित रहे, चाहे सारा संसार मिल
ाये या छिन जाये, किन्तु स्वभाव यही रहना चाहिए।
क्रिय वैरागियों का उदाहरण स्वयं तुलसीदास जी ने दिया
—

'नारि मुई गृह सम्पत्ति नाशी।
मूँड मुडाय भये सन्यासी !!'

अतः महापुरुषों का कहना है—

'हारिये न हिम्मत, बिसारिये न राम,
जा विधि राख राम, ता विध पाइये विश्राम।'
"इबादत है दुखियों को इमदाद करना।
जो नाशाद हो उनका दिल शाद करना।
खुदा की नमाज और पूजा यही है—
जो बर्बाद हो उनको आबाद करना।।"

यह प्रेम-पथ है, अजीब है यह रास्ता। खलिस भी होती
। हसरत भी होती है। महापुरुषों का यही पंथ रहा है।

'निराले हैं तुलसी के राम'
निराले सूरदास के श्याम,

मिले जब सद्‌गुरु मिटते पाप,
हरन होते जीवन-संताप !!'

मिले जो प्रेम-गली की राह, बने जीवन निहाल सारा ||

(श्री राम शरण पीतलिया: प्रेम पन्थ)

अन्ततोगत्वा यही सार हाथ आया कि जीवन परहित के लिए होना चाहिए।

'खिदमते खल्क जिन्दगानी है :।
जिन्दगी ऐसी शादमानी है ।।'

+ + +

फरवरी १९६५ अंक :—आज कल जन-साधारण को 'खिदमते-खल्क' का मंत्र अच्छा नहीं लगता है। क्योंकि अविद्या के कारण हमारा चिन्तन करें कुछ कुंद प्राय: हो गया है। हमारी प्रकृतियां दूसरों के अन्दर दोष ढूंढती रहती हैं। यही राग द्वेष है जो हमें अनात्य भावना से दबाये जा रहा है। महात्मा गाँधी ने एक वार कहा था—"हम दूसरों में ऐब निकालें, दूसरों को दोष दें और खुद को निर्दोष बताएं, यही बड़ी खतरनाक बात है।" कबीर जी ने खुले आम कह दिया था कि 'बुरा जो देखन मैं चला बुरा न दीखा कोय'—कितना उच्चादर्श है।

यह सब कुछ हमारे आचार-विचार और आस पास के वातावरण (संगति) पर पूरी तरह आधारित है। 'मनुष्य के आचार विचार बनाने में वातावरण का बड़ा सहयोग रहा है। अंग्रेजी में एक कहावत है—'आदमी अपनी संगति से जाना जाता है।' स्वामी तुलसीदास ने यहां तक कह दिया है—

"शठ सुधरहिं सत्संगति पाई"

क्योंकि मानव स्वभाव की सभी प्रतिक्रियाएं देश-काल एवं परिस्थिति से प्रभावित होती रहती हैं। सत्संगति मनुष्यों एवं पुस्तकों का हो सकती है। मनुष्यों की सत्संगति का प्रभाव सजीव होता है तथा चिर स्थायी रहता है। सत्संगति पारस पत्थर की भांति रहती है। आत्म संस्कार के लिए सत्संगति से सरल और श्रेष्ठ साधन दूसरा कोई नहीं है। और 'संसर्ग जा दोष गुणा भवन्ति'—मत के अनुसार यह गुण दोषों का जहाँ प्रेरक है वहाँ उनको देखने, समझने के लिए एक दर्पण भी है...'

—श्री गोपाल तिवारी : सत्संगति का जीवन पर प्रभाव

महापुरुषों की सत्संगति में जो जाकर आत्म-समर्पण कर देता है, उसको चिन्ता मुक्त समझिये। क्योंकि महापुरुषों की कृपा से उसकी रुकावटें दूर हो जाती है। महापुरुष में ईश्वर विराजमान रहता है; वही सभी कर्मों का कर्त्ता और फल बन कर समक्ष आता है। संत पलटू ने कहा है—

'ना मैं कियो, न कर सकों, साहब करता मोर।
करत, करावत, आप है, पलटू-पलटू शोर॥'

क्योंकि गुरू के दर्शन मात्र से सेवक का मुक्ति मार्ग खुल

जाता है। प्रभु को पाने के अथवा अपने स्वरूप के देखने के विद्वानों ने तीन मार्ग बताये—ज्ञानमार्ग, कर्म-मार्ग एवं भक्ति मार्ग। मार्ग कोई भी क्यों न अपनाया जाये, गुरु बिना गति असम्भव मानी गयी है। क्योंकि 'बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दियो बताय।' अतः सतगुरु महिमा अनंत है।

(श्री जगदीशलाल धींगड़ा : भक्ति)

सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार।
लोचन अनंत उघाड़ियाँ, अनंत दिखावण हार !!
बलिहारी गुरु आपणे, सैं हाडी के बार।
जिनि मनुष्य तैं देवता, करत न लागै बार !!

अतः गुरु कृपा का पात्र बनकर देव-पद पाया जा सकता। क्योंकि गुरु कृपा से एक दृष्टि में समष्टि समायी रहती है।

'सिया राम मय सब जग जानी।
करहुँ प्रणाम जोरि जुग पानी ॥'

इस सूत्र से प्रेमीका हृदय अत्यन्त पवित्र हो जाता है। ी का भोजन उसके गुरू का ध्यान एवं भजन होता है। प्रभु ा प्रेम ही उसकी निधि है, हरि का स्थान ही उसकी दुकान कर्मशाला या कर्मभूमि) है।

× × ×

मार्च १९६५ अंक :—प्रेम करना जिस तरह हर कोई नहीं जानता है, ठीक उसी प्रकार प्रेम-रस को कोई कोई तत्व-वेत्ता ही समझ सकता है। प्रेम-रस हमारी विचार रूपी भक्ति का परिणाम होता है। यह खट्टा है या मीठा है, कोई नहीं कह

सकता है। 'गूंगे के मुंह गुड़ का स्वाद' वाली अनुभवगम्य चीज़ है।

'जब मस्त स्वरूप में हूँ अपने, दुनियां के सुख को क्या जानूँ।
अब इस रस का है पान किया, अब उस रस को मैं क्या जानूँ"
(श्री मास्टर प्रभुदत्त ग्रोवर : प्रेम-रस)

यह प्रेम रस के स्वाद की विवेचना है, दीवाने की मस्ती का हाल है। फिर 'बड़े भाग्य मानुष तन पावा,' जो इस रस को नहीं जान सका है, वह मनुष्य मानवता के लक्ष्य पर नहीं पहुँच सका है।

सही अर्थों में जीवन का लक्ष्य यह बताया है कि इन्सान तुझे आत्म समर्पण करके जीना है, तुझे किसी का होकर जीना है। तुझे अपनी हस्ती मिटाके जीना है, और वह जीना ही जीना है, जिस पर जिन्दगी नाज़ करती है। यह जीना तो आत्म समर्पण से ही आ सकता है।

"मिलने की तेरी मैं हरदम जुस्तजू करता रहूँ,
प्यार की तेरे मैं हरदम गुफ्तगू करता रहूँ,
खतम हो सब वासनाएँ, खतम हो सब कामनाएँ,
आरज़ू कोई न हो, यही आरज़ू करता रहूँ।"

क्योंकि श्री स्वामी प्रेमानंद जी (जीवन की सार्थकता) ने जिन्दगी को, 'आँसू और मुस्कान के बीच का हिलता जुलता, एक तार, दोलन कहा है (Life is a pendulum between tears and smiles)। प्यार के बगैर तो यहजीवन भी फीका ही लगता है। प्यार की सच्चाई तभी हो सकती है

जब हृदय से घृणा-भाव दूर हो जाए। घृणा सदा घातक होती है, प्रेम अमर होता है। मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह घृणा को मिटाये और प्रेम को बढ़ाये। क्योंकि मानव का पंच भौतिक शरीर तो नाशवान है, अस्थिर है। किसी ने कितना सुन्दर कहा है—

"आदमी का जिस्म क्या है, जिसपे शैदा है जहाँ।
एक मिट्टी की इमारत, है एक मिट्टी का मकाँ।
खून का गारा लगाया, ईंट सब हैं हड्डियाँ।
चंद श्वासों पर खड़ा है, यह ख्याली आस्माँ।"

अभिप्राय यह है 'जब होश आया तो खाली हाथ पाया'

—वाली कहावत कहीं चरितार्थ न हो जाये। उत्तम विचार यही है अपनी हस्ती मिटाकर, अपने प्रभु के चरणों में निसार कर दो फिर दीप से दीप जलाते चलो। यही वह मंत्र है जिसमें साध्य की साधना की जा सकती है। सब कुछ तुम्हारे हृदय रूपी मंदिर में है, इसी की सफाई किया कर !

'दिल की धड़कन में ही मस्ती ढूंढ ले !
अपनी हस्ती में ही हस्ती ढूंढ ले।
भेद गर पाना है तुझको प्यार का—
देखने को दिल की बस्ती ढूंढ लें !!'

× × ×

अप्रैल १९६५ अंक

'जिसे यह चाहिए, जिसे वह चाहिए, उसे हैवान कहते हैं
'जिसे दरकार हो सकाम से निष्काम की, उसे इन्सान कहते हैं

जिसे शामो-सहर रहती है तलाश उसको, वही है सेवक —
सर्वस्व जिसका, नहीं कुछ आरजू, उसे भगवान कहते हैं।'

तो भाव, 'सकल पदारथ हैं जग माहीं' जो दिल भाये अपनालो। किन्तु अपनाना वही है जो मनुजता के लक्ष्य को पूर्ण कर दे। आवागमन का बन्धन छूट जाय। वही सच्ची कामना है, वही सच्चा ध्येय है। क्योंकि विद्वान एडीसन के मतानुसार, "अपने सिद्धान्त पर स्थिर न रहना चरित्र हीनता की निशानी है। क्योंकि सम्पूर्ण दुःखों का कारण हमारी चंचलता, अविवेक एवं अज्ञानता है।"

'आत्मा में न ज्ञान है, न अज्ञान है, न बन्धन है और न मुक्ति है। मुक्ति तो तब माने जब पहिले कोई बंधन हो,' श्री स्वामी पूर्णानंद जी : मामेकं शरणं व्रज) इससे यह सिद्ध हुआ कि दुःख-सुख मन के धर्म हैं, आत्मा के नहीं। किन्तु भ्रमवश हमने आत्मा में इनका आरोप किया हुआ है।

इसलिए यदि जन्म-मरण से बचना चाहते हो तो ऐसा ज्ञान-प्रप्ति से ही हो सकता है। जैसे प्रकाश से ही अंधेरे की निवृत्ति हो सकती है। उसी प्रकार आत्म-ज्ञान द्वारा ही अज्ञान की निवृत्ति हो सकती है। अज्ञान की निवृत्ति से कर्मों की निवृत्ति होती है, कर्म निवृत्ति से शरीरों की निवृत्ति और शरीरों की निवृत्ति से जन्म-मरण की निवृत्ति हो जायेगी।

'दीन जनों की सेवा करना, सबसे ऊँचा कर्म यही है।
सत्य मार्ग पर बढ़ते जाना, एक मात्र बस धर्म यही है।
हर एक में है हरि समाया, धर्म का केवल मर्म यही है।
बन तू जग का जग है तेरा, सुख की सीमा चर्म यही है।'

'जीवन की इस सीधी राह पर, रहा व्यर्थ क्यों दूरी नाप।
हरि से मिलना है जो पगले, हर प्राणी से करले मिलाप।'
(श्री खैराती लाल भाटिया : धर्म का मर्म)

मई १९६५ अंक :—पुराणों, श्रुतियों आदि के प्रमाणों से यही सिद्ध होता है कि 'हे मानव—देखो उसी वस्तु को, जिस को देखकर फिर कुछ भी देखने की इच्छा नहीं रहे। करो उस काम को जो फिर कभी न करना पड़े। चलो उस मार्ग पर ताकि फिर आना जाना ही न पड़े! इतना ही नहीं जब तक कोई मुशर्द कामिल नहीं मिलता है, निरन्तर खोज करनी चाहिए। क्योंकि हीरा मुश्किल से हासिल होता है। जब महान पुरुषों की शरण पा जाओ तो यही दो प्रश्न करने हैं, (१) मैं कौन हूँ और ईश्वर कहां है और उसके ... का साधन कौन सा है ?

(२) 'जात पात न पूछिये, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ो रहन दो म्यान॥'

मोल अवश्य ही तलवार का करना है, किन्तु मोल करते समय संतोष एवं धैर्य की अत्यावश्यकता होती है। "संतोष मन की वह दशा है, जिसमें मन-प्राप्ति में किसी अभाव की कल्पना से न तो खिन्न होता है और न किसी के अधिक पाने के लिए ही लालायित होता है। यह मन की प्रशिक्षित एवं मर्यादित वृत्ति होता है।"
(श्री हरवंश भाटिया 'रत्न' : संतोप क्या है ?)

कर्म चाहे सकाम भावना वाला हो अथवा निष्काम भावना

वाला पर इमसे संतोष वृत्ति से लक्ष्य को साधने में काफी सह-योग मिलता है । हालांकि निष्काम कर्म एव मंतोपयुक्त कर्म में बस नाम मात्र का ही भेद है । वास्तव में संतोप का अर्थ है—स्वार्थ नियं- त्रण और स्वार्थ का नियन्त्रण होना जीवन में नव जागरण का होना है ।" विद्वानों का कथन है—

गोधन, गजाधन, वाजाधन और रतन धन खान ।
जब आये संतोष-धन, सब धन धूरि समान ।।

स्वार्थ वृत्ति का त्याग कई बड़े लोगों के समकक्ष होता है । परहिताय, लोकहिताय प्रतिक्रियाएँ हमेशा स्वार्थ भावना के त्याग से उत्पन्न होती है । इससे हृदय का दर्पण स्वच्छ हो जाता है । मनुष्य को अपने आप की पहिचान हो जाती है । और हृदय से आवाज स्वयं ही आने लगती है ।

तूँ ही है राम, तू ही है जादो ।
तूँ ही है श्याम, तूँ ही है माधो !

यह अद्वैतवाद और द्वैतवाद की उलझन हमारी तर्क शक्ति के द्वारा तो मतान्तर जगत में फैल गये हैं, वरना ऐसा कोई वाद नहीं है । वही एक है और जो अनेकत्व का भाव हमें दिखायी पड़ता है, वह मिथ्या है ।

(श्री गणपत लाल श्रोत्रिय : अपने को पहिचानो)

अत: आत्म समर्पण की परमावश्यकता है । हर हालत में 'एक वही' जैसी अनुभवगम्य प्रेरणा की जरूरत है, प्रमाद और मोह की नही । क्योंकि तूँ सत् चित् आनंद है। आनंद प्रेम का ही रूप है । बिन-प्रेम आनंद कहाँ ? यहाँ तो साधक साध्य और साधन की परस्पर, पृथक अस्तित्व की सामंजस्य की जरूरत है । क्योंकि—

'ज्ञानहि भक्तिहिं नहीं कुछ भेदा।
गावहिं श्रुति, पुराण, बुध, वेदा !!'

अत: प्रभु की दिल में याद हमेशा रहनी चाहिए। उसके अलावा इस जगत में जो कुछ है मिथ्या है। प्रभु सर्वव्यापी है।

"जो तू है, सो मैं हूँ, जो मैं हूँ सो तू है।
न कुछ आरजू है, न कुछ जुस्तजू है।
मेरा राम मुझमें, मैं अब राम का हूँ—
न इक है, न दो है, सदा तू ही तू है।"

जून १९६५ अंक :—मनुष्य वह है जो जीवन के महत्व को समझता है। जीवन से अनुभव वही कर सकता है, उसके महत्व को वही समझ सकता है जिसका मस्तिष्क सद्ग्रन्थों, सद्पुरुषों की संगति से अक्सर ताल मेल खाता रहा हो। महापुरुषों ने मानव के प्रति मानव में 'बंधुत्व' होना चाहिए—ऐसी सद् शिक्षाएं प्रदान की हैं।

एक ही सच्चा प्रेमी करोड़ों जीवों को पवित्र कर जाता है। जिस प्रकार बरसते हुए मेघ जिधर से निकलते हैं, उधर की भूमि में अमृत-जल बरसाते चलते हैं। प्रेम के दर्शन मात्र से अज्ञान रूपी अन्धेरा दूर हो जाता है। क्योंकि तुलसीदास के शब्दों में :—

'मोरे मन प्रभु अस विश्वासा !!
राम ते अधिक राम कर दासा !!
राम सिन्धु घन सज्जन धीरा।
चंदन तरु हरि, सन्त समीरा !!'

(काष्ठि श्री कमल राम : प्रेम सांकिया)

अतः महापुरुषों की अनुकम्पा बिना, उनकी सेवा के बिना मुक्ति मार्ग नहीं मिलता है। रामायण में ऐसा स्पष्ट लिखा गया है—

'गुरू बिन भवनिधि तरै न कोई।
जो विरंच शंकर सम होई॥
गुरु बिन जन को होत न ज्ञाना।
कहे शास्त्र और वेद पुराना॥
गुरु की शरण जात जन जोई।
तिन्है यथारथ मानत सोई॥
गुरु विन नर का भ्रम नहीं जाई।
चाहे कोटिन करो उपाई॥

भाव यही है कि निस्वार्थ प्रेम ही सच्ची भक्ति है और समस्त वासनाओं से रहित होना ही मुक्ति है।

अतः मानव का लक्ष्य यही होना चाहिए:—

"हरमिलापी बनके दुनियाँ में सदा गुज़रान कर।
दिल किसी का ना दुखा तू, हर में हरि पहचान कर।"

अतः उपसंहार में 'आपके अपने विचार' श्री सतगुरु के चरणों में इन चँद पॅक्तियों के साथ समर्पित करते हैं—

"अब सौंप दिया इस जीवन का,
सब भार तुम्हारे हाथों में॥
है जीत तुम्हारे हाथों में—
और हार तुम्हारे हाथों में।
मेरा निश्चय बस एक यही—
एक बार तुम्हें पा जाऊँ मैं।

अर्पण करदूँ इस दुनियाँ का—
सब प्यार तुम्हारे हाथों में।
जो जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ—
ज्यों जल में कमल का फूल रहे।
मेरे अवगुण दोष समर्पित हों,
करतार तुम्हारे हाथों में ॥

\+ + +

१. 'आपके अपने विचार,' ('हरमिलाप-संदेश' के जून १९६ अंक तक) कवि, गीतकारों एवं लेखकों की अपनी विचा धाराएँ हैं क्योंकि श्री १०८ श्री मुनि हरमिलापी ज महाराज के प्रवचन "मानव जीवन का रहस्य" इसी अं में समाप्त होता है।—हमारा प्रयास केवल सम्पादन का विधि के अनुसार कड़ी से कड़ी, भाव से भाव जोड़ना मात्र है।

२. हम 'हरमिलाप संदेश'—मासिक प्रकाशन के माननीय संपादक सर्वश्री रामशरण पीतलिया, कामाँ, एवँ प्रभुदत्त ग्रोवर के अति आभारी हैं जिन्होंने मासिक प्रकाशन में अपनी कार्य कुशलता का परिचय दिया। इस पुस्तक प्रकाशन में उन सभी सहृदय साथियों के प्रति भी हम कृतज्ञ हैं जिन्होंने प्रकाशन, प्रिंटिग, संशोधन आदि कार्यों में अपनी अमूल्य राय एवं सहयोग दिया।

—'प्रदीप' जयपुरी
हरमहेन्द्र 'धीरज'

दिखायी देंगे ? निरा फरेब, खूब-सूरत धोखा ! अपने आप को छलने से क्या हासिल, ये जहरीले दाग़ छिप न सकेंगे। वैसे तेरी मर्जी......।।

○ रे ! मूढ़: उठ जरा चिराग़ में तेल डाल, ताकि रोशनी हो सके ? ताकि अन्धेरे के बादल हट जायें ; तुझे 'अपने आप' का ख्याल आ जाये। देख दीया बुझा......फिर हाथ मलते रह जाना......।।

○ क्यों नींद आ रही है ? ठीक है चोला भी जीर्ण हो गया है। धब्बे ही धब्बे नजर आ रहे हैं। ध्यान से सोना, कहीं बचा हुआ भी न फ़ट जाए। मालूम नहीं, अब तो गरेबाँ ही गरेबाँ बाकी है। जरा आहिस्ते से करवट लो। 'भागते भूत की लँगोटी भली,' देखता क्या है जो कुछ शेष है, उसकी पहरेदारी करले......।।

○ दीया बुझ गया...। अग्नि में गरेबाँ भी जल जायेगा। नादान, अब हाथ फैलाकर रहम की भीख क्यों माँगता है ? अब रहमत के नाम पर चार गज जमीन; बांस की ठठरी, चार गज कपड़ा; मदद के लिए चार भाई, चार आँसू मिल सकते हैं ? सभी कुछ चार दीवारी के बाहर, चार क्षणों के वास्ते; चार क़दमों तक की सीमा है इस रहमत की......।।

○ हिम्मत परस्त बुज़दिल......।। जा, आना फिर लौट-कर। देख, लेकिन अब की बार धब्बे न लगा लेना। पता नहीं अब कैसा चोला मिले......।

"वदल गयी है बार अनेको, रंग-बिरंगी लाग चुदरिया।
हाट लगी थी सांस-सांस की, दुकान लगी थी सजी उमरिया।
अब नहीं मिलेगा इससे ज्यादा, न व्यर्थ चुदरियां खोता जा।
मन का कलुष, नीर नैनों का, तन की चुदरियां धोता जा।।
लें० :—'प्रदीप' जयपुरी, देहली-३८

सन्त वाणी : सत्य वचन

१:—"जीवन का सार यह वतलाता है कि इन्सान तुझे समपर्ण होकर जीना है।"

—श्री १०८ श्री मुनिजी हर्षमिलापी

२:—"दूसरों के साथ प्रेम करना ही भगवान के साथ प्रेम करना है।"

—टालसटॉय

३:—"समय, मृत्यु और रोग किसी का इन्तजार नहीं करतीं।"

—संतवाणी

४:—"वाणी ही मनुष्य का एक ऐसा आभूषण है जो अन्य आभूषणों की तरह कभी नहीं घिसता।"

—शेखशादी

५:—"धन से दुनियां की सब वस्तुएं खरीदी जा सकती हैं, परन्तु प्यार एवँ दिल इसके अपवाद हैं।"

—अज्ञात

६:—"प्यार (मोहब्बत) का आगाज नहीं, किन्तु अँजाम विचारणीय होता है।"

—सूक्ति

७:—"दूसरों को क्षमा करो, अपने आपको नहीं।"

महात्मा गाँधी

८:—"किसी के दुर्वचन कहने पर क्रोध न करना क्षमा कहलाता है।"

—स्वामी विवेकानँद

९:—"आरोग्य परम सुख है, सँतोष परम धन है, विश्वास परम वस्तु है, और निर्वाण परमानँद है।"

—गौतम बुद्ध

१०—"फूल चुनने के लिए ठहरो मत, । आगे चलो । तुम्हारे मार्ग में निरन्तर फूल खिलते रहेगें।"

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

११:—"तुम्हारा जो कर्म है उसे पूरा करने की कोशिश करो। नतीजा ईश्वर पर छोड़ दो।"

—योगीराज कृष्ण

१२:—"अच्छा मित्र दो शरीर में एक आत्मा के समान हैं।"

—अरस्तु

१३:—"चरित्र मनुष्य के अन्दर रहता है, यश उसके बाहर।"

—अज्ञात

१४:—"दुर्वचन पशुओं तक को अप्रिय लगते हैं।"

—बुद्ध

१५:—"परमात्मा पूजा से नहीं, वल्कि प्रेम से मिलते हैं।"

—स्वामी दयानँद

१६:—"पाप के पंजों में फँसा हुआ मन पतझड़ का पत्ता होता है, जो हवा के जरा से झोकें में गिर जाता है।"

—मुंशी प्रेमचंद

१७:—'जिस प्रकार खौलते पानी में अपना प्रतिबिम्ब दिखाई नहीं दे सकता, उसी प्रकार क्रोधी मनुष्य यह नहीं समझ पाता कि उसकी भलाई किसमें हैं ।'

—महात्मा बुद्ध

१८:—'हे, गरीब को न सता, गरीब रो देगा; सुनेगा मालिक तो जड़ से खो देगा।'

—स्वामी दयानँद

१९:—"संसार में कोई भी शक्ति इन्सान को नहीं गिरा सकती, इन्सान को गिराने वाला इन्सान स्वयं ही है ।"

—स्वामी विवेकानँद

२०:—"संसार में प्रेम और विश्वास सदा के लिए हैं, परन्तु लक्ष्मी नहीं ।"

—तुलसीदास

२१:—"पुस्तकों से बढ़कर विश्वास पात्र मित्र और कौन हो सकता है ?"

—डा० राजेन्द्रप्रसाद

२२:—'जीवन का आधार अच्छा चाल चलन है ।'

—जवाहरलाल नेहरू

२३:—'जनता जनार्दन में विश्वास करना सबसे बड़ी ताकत जुटाना है ।'

—लाल बहादुर शास्त्री

२४:—"समय की बर्बादी दुनियां की सबसे बड़ी फिजूलखर्ची है ।"

—हितोपदेश

२५:—'फूल को खिलने दो, मधु मक्खियाँ अपने आप पास बैठेंगी। चरित्रवान बनो, जगत अपने आप मुग्ध जायेगा।'

—रामकृष्ण परम

२६:—'यदि अब तक जीवन का उद्देश्य निश्चित न किया तो आज ही इसी समय करलो। उद्देश्यहीन जी व्यर्थ है। एक ओर चलो, केवल परमात्मा की अ बढ़ो। जीवन की प्रत्येक क्रिया और प्रत्येक संक केवल उन्हीं के लिए हो।'

—आनंदवा

२७:—'महापुरुषों की सद्संगति स्वर्ग से बढ़ कर है, क्यों इन्हीं के द्वारा स्वर्ग का मार्ग तैयार होता है।'

—सूरि

२८:—'न्याय से बढ़कर कोई रक्षक नहीं, विचार से बढ़क कोई राजा नहीं, पदार्थ से बढ़कर कोई खड्ग नहीं और सत्य से बढ़कर सत्य नहीं।'

—सुकरात

२९:—'धर्म को शक्ति ही जीवन को शक्ति है। धर्म की दृष्टि ही जीवन की दृष्टि है।'

—डा० राधाकृष्णन,

३०:—'प्राणीमात्र को न सताना ही उत्तम दान है, कामना का त्याग ही उत्तम तप है, वासनाओं को जीतने में ही वीरता है और सत्य ही समदर्शन है।'

—संतवाणी

× × ×

गुरु-महिमा

सबमें शामिल हो मगर सबसे जुदा लगते हो !
सिर्फ मुझको ही नहीं, सबको खुदा लगते हो !!
शोखी रूख पे है तुम्हारे इबादत की,
तमन्ना मिलने की सभी से शाहादत सी,

सबको शीरीं जो लगे, ऐसी सदा लगते हो !
सिर्फ मुझको ही नहीं, सबको खुदा लगते हो !!
शमाँ जलती है, जलते हैं परवाने !
प्यार के मैकदे में, मिलन के पैमाने !!

भोर मंन-मंदिर की हो—वादे-सबा लगते हो !
सिर्फ मुझको ही नही, सबको खुदा लगते हो !!
दोस्त दीनों के हो; वफ़ा हो, आदमी हो !
रहबर हो सभी के, रोशनी हो !!

धूप छाया को जो मिलाये, ऐसी घटा लगते हो !
सिर्फ मुझको ही नहीं, सबको खुदा लगते हो !!
कुछ तमन्ना है तुम्हें कि नातमन्ना हो !
एक हस्ती हो, मुस्कराती दुनियां हो !!

भला कब-किससे खफा हो, सबसे रजा लगते हो !
सिर्फ मुझ को ही नहीं सबको खुदा लगते हो !!
दूर जितने हो, उतने करीब भी हो !
अमीरो-गरीब मगर, नसीब भी हो !!

अश्क-नयनों के हो, ऐसा नशा लगते हो !!
सिर्फ मुझको ही नहीं, सबको खुदा लगते हो !!
पाकर भी अभी गुमां है ना पाने का !
जैसे उम्मीद हो, मौका हो आने का !!
शीरीं जन जन के हो, सभी के शहंशाह लगते हो !!
सिर्फ मुझको ही नहीं, सबको खुदा लगते हो !!
कभी निर्गुण, सानँद, साकार कभी !
कभी निर्विकार कि निराकार कभी !!
फरिश्ता 'हरि' के हो, 'हरहर' की दवा लगते हो !
सिर्फ़ मुझको ही नहीं, सबको खुदा लगते हो !!

कवि :—'प्रदीप' जयपुरी, देहली–३४

पढ़ो : समझो : करो

१:—नहाये धोये क्या भया, जो मन मैल न जाय।
मीन सदाँ जल में रहे, धोये बास न जाय !!

२:—गर मैं ऐसा जानती प्रीत किये दुःख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत न कीजो कोय !!

३:—ईश्वर से गुरु में अधिक, धारे भक्ति सुजान !
बिन गुरु भक्ति प्रवीण हूँ, लहे न आत्म ज्ञान !!

४:—मानवता भी है यही, सब ग्रन्थन को लेख।
यही सार वेदान्त को, हर में हरि को देख !!

५:—श्वासों की कर सिमरनो, सोऽहम् का कर जाप ।
लीन करो मन ब्रह्म में, दूर होय संताप !!

६:—बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न दीखा कोय !
जो दिल खोजा आपना, मुझसा बुरा कोय !!

७:—कुत्ता जो दर-दर फिरै, दुर-दुर करे सब कोय ।
एक ही दर का हो रहे, दुर-दुर करे न कोय !!

८:—कबिरा वह नर अन्ध है, गुरु को मानै और ।
हरि रूठे गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहि ठौर !!

९:—मन मथुरा, दिल द्वारिका, काया काशी जान ।
दसम द्वार के बीच में, करो श्याम का ध्यान !!

गुरू-आरती

जय गुरुदेव दयानिधि, दीनन हितकारी,
स्वामी दीनन हितकारी ।
जय जय मोह विनाशक, भव बंधन हारी,
ॐ जय जय जय गुरुदेव ।।

ब्रह्मा विष्णु, सदा शिव, गुरु मूर्ति धारी,
स्वामी गुरु मूर्ति धारी ।
वेद पुराण बखानत, गुरु महिमा भारी,
ॐ जय जय जय गुरुदेव ।।

जप, तप, तीर्थ, संयम दान विविध दीन्हें,
स्वामी दान विविध दीन्हें ।

गुरु विन ज्ञान न होवे कोटि जतन कीनै,
ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥
माया, मोह, नदी जल जीव वहे सारे,
स्वामी जीव बहे सारे ।
नाम जहाज बिठाकर, गुरु पल में तारे,
ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥
काम, क्रोध, मद मत्सर, चोर बड़े भारे,
स्वामी चोर बड़े भारे ।
ज्ञान-खड्ग दे कर में, गुरु सब संहारे,
ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥
नाना पंथ जगत में, निज निज गुण गावें,
स्वामी निज निज गुण गावें ।
विवेक सार बताकर, गुरु मार्ग लावें,
ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥
गुरु चरणामृत निर्मल, सब पातक हारी,
स्वामी सब पातक हारी ।
बचन सुनत तम नाशे सब संशय टारी,
ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥
तन मन धन सब अर्पण, गुरु चरणन कीजै,
स्वामी गुरु चरणन कीजै ।
ब्रह्मानंद परम पद, मोक्ष गति लीजै,
ॐ जय जय जय गुरुदेव ॥

—: o :—

आरती के बाद प्रार्थना अरदास

अवगुण हार की विनती, सुनो गरीब निवाज़ ।
जे मैं पूत कपूत हूँ बहुड़ पिता की लाज ॥

नहीं विद्या, नहीं बाहुबल, नहीं खरचन को दाम
तुलसी ऐसे पतित की तुम पत राखो श्रीराम ॥

अवसर राखी द्रोपदी, संकट ज्यों प्रह्लाद ।
कहन सुनन को कुछ नहीं, प्रभु शरण पड़े की लाज ॥

गुरुजी को सिर पर राखिये, चलिये आज्ञा माहिं ।
कहि कबीर तिहिं दास को, तीन लोक डर नाँहि

गुरु गोविन्द दोनों खड़े, मैं किसके लागूँ पाँहि ।
बलिहारी गुरु अपने जिन गोविन्द दियो बताय ॥

गुरु समरथ सिर पर खड़े, कहे कबीर तिहिं दास ।
ऋद्धि सिद्धि सेवा करें, मुक्ति न छोड़े पास

जै मैं भूल बिगाड़िया न कर मैला चित्त ।
साहिब गौरा लोड़िये, नफ़र विगाड़े नित ॥

आशावन्ती दर खड़ी, कन्न न दोई दे ।
एह दरबार न छोड़सां मेरा सतगुरु मेहर करे ॥

—बहिन जीवन्मुक्त जी, अम्बाला